भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प-८२

लेखक—
स्व० पं० दीपचन्दजी शाह, काशलीवाल

सम्पादक—
पं० परमानन्दजी जैन शास्त्री

प्रकाशक—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प-८२

अनुभवप्रकाश

लेखक—
स्व० पं० दीपचन्दजी शाह, काशलीवाल

*

सम्पादक—
पं० परमानन्दजी जैन शास्त्री

*

प्रकाशक—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति ११००
वि० सं० २०१९ वीर नि० सं० २४८९
दूसरी आवृत्ति ११००
वि० सं० २०२२ वीर नि० सं० २४९२
तीसरी आवृत्ति–११००
वि. सं. २०२८ वीर नि. सं. २४९८
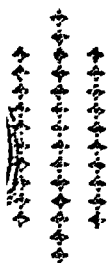
: मूल्य :
०=६५ पै

: मुद्रक :
मगनलाल जैन
अजित मुद्रणालय
सोनगढ (सौराष्ट्र)

प्रकाशकीय

यह अनुभव-प्रकाश ग्रन्थ बहुत सुगम-सीधीसादी शैलीका सुलभ ग्रन्थ है। स्वर्गीय पं० श्री दीपचन्दजी शाह द्वारा लिखा गया है। इस ग्रन्थकी प्रतियाँ हिन्दी भाषामें तीन बार अन्य संस्थाओं द्वारा तथा तीन बार गुजराती भाषामें व एकबार हिंदी भाषामें दि० जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट द्वारा छप चुकी हैं अब यह ग्रन्थ हिंदीमें न मिलनेसे और धर्म-जिज्ञासुओं द्वारा इसकी बहुत माँग होनेसे इसकी द्वितीयावृत्ति छपवाई है।

श्री नेमीचन्दजी पाटनी (आगरा) जिनने अपनी पाटनी ग्रन्थमाला द्वारा पं० परमानन्दजी शास्त्रीके पास सम्पादन कराकर इस ग्रन्थका प्रकाशन मदनगंज (किशनगढ़) से कराया था। आपकी अनुमति लेकर उसीके आधारसे यह ग्रन्थ प्रकाशित कराया है।

आत्मिक स्वाधीनता, यथार्थता और वीतरागताकी दृष्टिसे स्वाध्याय करके इस ग्रन्थको आत्मकल्याणका हेतु बनावें ऐसी प्रार्थना है।

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
वीर सं० २४९२
वि० संवत् २०२२

रामजी माणेकचन्द दोशी
श्री दि० जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मेरे दो शब्द

यह अनुभव-प्रकाश ग्रन्थ अपने नामसे ही अपने गुणोंको प्रगट कर रहा है। अनुभवसे ही अन्तरंग आत्मामें अलौकिक प्रकाश होता है; इसलिये जो सज्जन इस ग्रन्थका स्वाध्याय करें वे केवल शब्द-सौन्दर्य पर ही लक्ष्य नहीं रक्खें, शब्दसे अन्तरंग-में अर्थ पर ध्यान दें तथा अर्थसे उसके साकार और निराकार ज्ञान पर लक्ष देवें जिससे वास्तविक वचनातीत आनन्दकी प्राप्ति होगी।

मैंने भी इस ग्रन्थसे इसी क्रमसे अपने अनुभवमें अद्वितीय लाभ उठाया है और इसी उपकार निमित्त स्वर्गीय साधर्मी शाह दीपचन्दजी काशलीवाल द्वारा कृत मँजी हुई रचनाओंमेंसे इस एक रचनाके ध्यान एवं गम्भीर मनन पूर्वक पढ़नेके लिये आप सज्जनोंसे भी आग्रह करता हूँ।

निश्चयसे इन्होंने अपनी बहुतसी ग्रन्थ-रचनाओंमें आत्मा-का प्रकाश शब्दों द्वारा अनुपम रूपसे दिखलाया है; उनमेंसे दो ग्रन्थ एक आत्मावलोकन तथा दूसरा चिद्विलास हमें और उपलब्ध हो गये हैं और उनको भी हम शीघ्र प्रकाशित करानेका प्रयत्न कर रहे हैं, आशा है वे भी अपनी अनुपम छटा लेकर आपको अनुभव-वृद्धिमें सहायक होंगे।

विनीत:—

अजमेर
ता० १-१-४७

चौधरी कानमल
मारोठ निवासी

प्रस्ताविक

[पं० दीपचन्दजी काशलीवाल]

पं० दीपचन्दजी शाह अठारहवीं शताब्दीके प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान और कवि थे। आप आध्यात्मिक ग्रन्थोंके मर्मज्ञ और सांसारिक देह भोगोंसे उदास रहते थे। आपकी परिणति सरल थी, सभी साधर्मी भाइयोंसे आपका वात्सल्य था। आपकी जाति खंडेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। आप सांगानेरके निवासी थे और बादमें कारणवश जयपुर राज्यकी पुरातन राजधानी आमेरमें आ गये थे, वहीं पर रहते हुए इन्होंने ग्रन्थ-रचना की है। इससे और अधिक परिचय आपका प्राप्त नहीं हो सका इसलिये यहाँ पर उनके मातृ-पितृ, जीवन, शिक्षा तथा जीवन घटनाओंके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा जा सकता।

आप तेरह पंथके अनुयायी थे। यद्यपि उस समय तेरह और बीस पंथमें विशेष कशमकश नहीं थी जितनी कि बादको उसमें खींचातानी हुई, परन्तु दिगम्बर जैन समाजमें तेरह-बीस पंथका भेद सं० १७७९ से पूर्वका है, उसका निश्चित समय तो अभी अज्ञात है परन्तु इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि भट्टारकोंकी तानाशाहीके खिलाफ यह पंथ अठारहवीं शताब्दी तथा इससे पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। और बादको

वह खूब ही विस्तृत हुआ। इससे सबसे अधिक लाभ तो यह हुआ कि जैन शास्त्रोंका अध्ययन एवं पठन-पाठन जो एक अर्से-से रुक-सा गया था पुनः चालू हो गया। और आज जैन-शास्त्रोंके मर्मज्ञ जो विद्वान देखनेमें आ रहे हैं यह सब उसीका प्रतिफल है। इस पंथका श्रेय जयपुरके उन विद्वानोंको प्राप्त है जिन्होंने अपनी निःस्वार्थ सेवा एवं कर्तव्य-निष्ठा द्वारा इसे पल्लवित किया है।

आपकी रचनाओंका अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि आपके हृदयमें संसारी जीवोंकी विपरीताभिनिवेशमय परिणतिको देखकर एक प्रकारकी टीस थी और वे चाहते थे कि संसारके सभी प्राणी स्त्री-पुत्र-मित्र-धन-धान्यादि वाह्य पदार्थोंमें आत्मत्वबुद्धि न करें—उन्हें भ्रमवश अपनी न मानें, उन्हें कर्मोदयसे प्राप्त समझें, तथा उनमें कर्तृत्वबुद्धिसे समुत्पन्न अहंकार-ममकार रूप परिणति न होने दें। ऐसा करनेसे ही जीव अपने जीवनको आदर्श, सन्तोषी और सुखी अनुभव कर सकता है इसीसे आपने अपनी आध्यात्मिक गद्य-पद्य रचनाओंमें भव्यजीवोंको परपदार्थमें आत्मत्वबुद्धि न करनेकी प्रेरणा की है और उससे होनेवाले दुर्विपाकको भी दिखलानेका प्रयत्न किया है; उनकी ऐसी भावना ही उनकी निम्न रचनाओंका प्रधान कारण जान पड़ता है। इसलिये उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें उस विषयको वार-वार समझानेका प्रयत्न किया है।

रचनाओंका परिचय

इस समय आपकी निम्न रचनाएँ उपलब्ध हैं। अनुभव-प्रकाश, आत्मावलोकन, चिद्विलास, परमात्म पुराण, उपदेशरत्न-माला और ज्ञानदर्पण। आपकी ये सभी कृतियाँ आध्यात्मिक रससे ओत-प्रोत हैं और उनमें जीवात्माको आध्यात्मिक दृष्टिके बोध करानेका खासा प्रयत्न किया गया है। इन रचनाओंमें ज्ञान-दर्पणको छोड़कर शेष सभी रचनाएँ हिन्दी गद्यमें हैं जो ढूंढारी भाषाको लिये हुए हैं जैसा कि अनुभव-प्रकाशके निम्न अंशसे प्रगट है:—

"महा मुनि जन निरन्तर स्वरूप सेवन करैं हैं तातैं अपना त्रैलोक्य पूज्य सवतैं उच्च पद अवलोकि कार्य करना है। कर्मघटामें मेरा स्वरूप-सूर्य छिप्या है। कछु मेरा–स्वरूप-सूर्यका प्रकाश कर्म-घटा करि हण्या न जाय, आवरचा है—ढका हुआ है, घटाका-जोर है [सो] मेरे स्वरूप कूं हणि न सकै। चेतनतैं अचेतन न करि सकै, मेरी ही भूल भई, स्वपद भूला, भूल मेटि जब ही मेरा स्वपद ज्योंका त्यों वना है।"

यह भाषा अठारहवीं सदीके अन्तिम चरणकी है; क्योंकि पं० दीपचन्दजीने अपना 'चिद्विलास' नामका ग्रन्थ वि० सं० १७७९ में बनाया है। इससे यह भाषा उस समयकी ही हिन्दी गद्य है, वादको इसमें भी काफी परिवर्तन और विकास हुआ है और उसका विकसित रूप आचार्यकल्प पं० टोडरमल्लजीके 'मोक्ष-मार्गप्रकाशक' आदि ग्रन्थोंकी भाषासे स्पष्ट है। यह भाषा ढूंढारी और ब्रज भाषा मिश्रित है; परन्तु यह उस समय बड़ी ही लोक-

प्रिय समझी जाती थी। आज भी जब हम उसका अध्ययन करते हैं तब हमें उसकी सरसता और सरलताका पद-पद पर अनुभव होता है। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थकर्ताकी भाषा उतनी परिमार्जित नहीं है जितना कि परिमार्जित रूप पंडित टोडरमल्लजी और पं० जयचन्द्रजी आदि विद्वानोंके टीका-ग्रन्थोंकी भाषामें पाया जाता है, फिर भी उसकी लोकप्रियता और माधुर्यमें कोई कमी नहीं हुई। इस भाषाका साहित्य जैनियोंका ही अधिक जान पड़ता है।

आपकी पद्य रचना भी बड़ी ही सुन्दर और भावपूर्ण है। उसके अवलोकनसे आपकी कवित्व-शक्तिका सहज ही अनुमान हो जाता है, कविता भी सरल और मनमोहक है। यद्यपि जैन समाजमें कविवर बनारसीदास, भगवतीदास, भूधरदास, द्यानत-राय और दौलतराम आदि हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध कवि हुए हैं; जिनकी काव्य-कला अनुपम है। उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्यकी अपूर्व देन हैं; वह पढ़नेमें सरस और मधुर प्रतीत होती हैं। यद्यपि पंडित दीपचन्दजी शाहकी कविता मध्यम दर्जेकी है; परन्तु उसमें भी स्वाभाविक सरसता विद्यमान है और वह कविकी आन्तरिक प्रतिभाका प्रतीक है।

पाठकोंकी जानकारीके लिये 'ज्ञानदर्पण'के दो पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

अलख अरूपी अज आतम अमित तेज, एक अविकार सार पद त्रिभुवनमें, चिरलों सुभाव जाको समै हू सम्हारो नांहि, पर-पद आपो मानि भम्यो भव वनमें। करम कलोलनिमें

मिल्यो है निसंक महा, पद-पद प्रति रागी भयो तन-तनमें; ऐसी चिरकालकी बहु विपति विलाय जाय, नैक हू निहार देखो आप निज धनमें ॥ ६७ ॥

निहचै निहारत ही आत्मा अनादि सिद्ध, आप निज भूल ही तं भयो विवहारी है; ज्ञायक सकति यथाविधि सो तो गोप्य दई, प्रकट अज्ञानभाव दशा विसतारी है। अपनों न रूप जानै और ही सौं और मानै, ठानै बहु खेद निज रीति न संभारी है। ऐसे ही अनादि कहो कहा सिद्धि भई, अब नैक हू निहारो निधि चेतना तुम्हारी है।

इन पद्योंमें बतलाया है कि "एक आत्मा ही संसारके पदार्थोंमें सारभूत है, वह अलख है, अरूपी है, अज और अमित तेजवाला है; परन्तु इस जीवने कभी भी उसकी सँभाल नहीं की अतएव परमें अपनी कल्पना कर भव-वनमें भटकता रहा है। कर्मरूपी कल्लोलोमें निःशंक डोलता हुआ पद-पदमें रागी हुआ है—कर्मोदयसे प्राप्त शरीरोंमें आसक्त रहा है। यदि यह जीव अपने स्वरूपका भान करने लग जाय तो क्षणमात्रमें चिरकालकी बड़ी भारी विपत्ति भी दूर हो सकती है। स्वका अवलोकन करते ही अनादि सिद्ध आत्माका साक्षात् अनुभव होने लगता है; परन्तु यह जीव अपनी भूलसे ही व्यवहारी हुआ है। इसने अपनी ज्ञायक (जाननेकी) शक्तिको गुप्त कर अज्ञानावस्थाको विस्तृत किया है। यह अपने चैतन्यस्वरूपको नहीं जानता किन्तु अन्यमें अन्यकी कल्पना करता रहता है। अतएव खेद-खिन्न होता हुआ भी अपनी रीतिको नहीं सँभालता है। इस

तरह करते हुए इस जीवको अनादि काल व्यतीत हो गया; परन्तु स्वात्मलब्धिकी प्राप्ति नहीं हुई। कविवर कहते हैं कि हे आत्मन्! तू अब भी पर पदार्थोंमें आत्मत्वबुद्धिका परित्याग कर, अपने स्वरूपकी ओर देख, अवलोकन करते ही साक्षात् चेतनाका पिण्ड एक अखण्ड ज्ञान-दर्शनस्वरूप आत्माका अनुभव होगा, वही तेरी आत्म-निधि है।"

कविवरने इन पद्योंमें कितना मार्मिक उपदेश दिया है इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं, अध्यात्मके रसिक मुमुक्षुजन उससे भली भाँति परिचित हैं। इस तरह सारा ही ग्रन्थ उपदेशात्मक अनेक भावपूर्ण सरस पद्योंसे ओत-प्रोत है। इस ग्रन्थका रसास्वादन करते हुए यह पद-पद पर अनुभव होता है कि कविकी आंतरिक भावना कितनी विशुद्ध है और वह आत्मतत्त्वके अनुभवसे विहीन जीवोंको उसका सहज ही पथिक बनानेका प्रयत्न करती है।

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम अनुभव-प्रकाश है, ग्रन्थका जैसा नाम है उसके अनुसार ही उसमें विषयका विवेचन सरल हिन्दी भाषामें किया गया है और अनेक दृष्टान्तों द्वारा उसे समझानेका प्रयत्न किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ पहले मुद्रित तो हुआ था; परन्तु उसमें अनेक मोटी-मोटी भूलें रह गई थीं जिन्हें नया मन्दिर धर्मपुरा देहलीकी दो हस्तलिखित प्रतियोंकी सहायतासे शुद्ध करनेका भरसक प्रयत्न किया गया है। परन्तु खेद है कि वे दोनों प्रतियाँ भी बहुत कुछ अशुद्धियोंको लिये हुए हैं अतएव मैं एक शुद्ध प्रतिकी तलाशमें था; परन्तु वह कहींसे भी प्राप्त

नहीं हो सकी, और न उनकी दूसरी रचनायें ही मेरे सामने हैं जिन सबका पाठकोंको परिचय कराया जाय, ऊपर ग्रन्थोंके जो नामोल्लेख किये गये हैं वे अपने जयपुरके पुराने नोटोंके आधारसे ही किये गये हैं। ग्रन्थमें भाषा-साहित्यकी दृष्टिसे काफी परिवर्तन एवं परिवर्धनकी आवश्यकता थी; परन्तु पूर्व कृतिकी सुरक्षाकी दृष्टिसे अपनी ओरसे कुछ भी नहीं लिखा गया, जो कुछ बनाया या सुधार किया उसे गोल ब्रेकेटके भीतर दे दिया है; मूलमें शुद्ध पाठ रक्खा है और नीचे फुटनोटमें उनके अशुद्ध पाठकी सूचना कर दी गई है। साथमें संस्कृत प्राकृत पद्योंका भाषानुवाद भी यथा स्थान फुटनोटमें दे दिया है और विषयका स्पष्टीकरण करनेके लिये तुलनात्मक टिप्पण भी दे दिये हैं; इस तरह इस संस्करणको उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया है। आशा है यह पाठकोंको पसन्द आयगा।

आभार

अन्तमें मैं उन सब सज्जनोंका आभार प्रगट करता हूँ जिनके सहयोग और प्रेरणासे मैं प्रस्तुत ग्रन्थको इस रूपमें पाठकों-के समक्ष रख सका हूँ।

श्रीमान् बा० नेमीचन्दजी पाटनी, जो एक धर्मनिष्ठ परोप-कारी सज्जन हैं जिनकी प्रेरणासे मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हो सका। ला० रतनलालजी मैनेजर शास्त्र भंडार दि० जैन नया मन्दिर धर्मपुरा, देहली, जिन्होंने मेरी प्रेरणाको पाकर अनुभव-प्रकाशकी दोनों हस्त-लिखित प्रतियाँ संशोधनार्थ मेरे पास भेज दी। स्नेही

मित्र पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्यने समय-समय पर अपना परामर्श दिया और प्रस्तुत प्रेस कापीके कुछ भागको एक बार पढ़नेकी कृपा की। उपान्तमें मैं अपनी धर्मपत्नी सौ० इन्दुकुमारी जैन 'हिन्दी रत्न'का नामोल्लेख कर देना उचित समझता हूँ जिसने इस ग्रन्थकी प्रेस कापी बड़ी ही सावधानीसे तैयार की है।

ता० १२-८-४६

परमानन्द जैन शास्त्री
वीर सेवा मंदिर, सरसावा

प्रकाशकीय निवेदन

(तृतीय आवृत्ति)

यह "अनुभव-प्रकाश" पुस्तक धर्मजिज्ञासुओंको अत्यन्त प्रिय होनेसे इसकी ३-४ आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। तदुपरान्त श्री दि० जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ द्वारा भी यह पुस्तक हिन्दीमें दो वार तथा गुजरातीमें तीन वार छप चुकी है। इसमें सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा तत्त्वज्ञानका सरल उपाय दरशाया है। श्री स्व. पं. श्री दीपचन्दजी काशलीवालने इस पुस्तक द्वारा मुमुक्षु-समाज पर बड़ा उपकार किया है। आशा है अध्यात्मरसिक मुमुक्षुजन इसका पूरा लाभ उठायेंगे।

आश्विन शुक्ला १५
वीर नि० सं. २४९८

साहित्य प्रकाशन समिति,
श्री दि० जैन स्वा. मं. ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

भगवान् श्री कुन्दकुन्द–कहान जैन शास्त्रमाला पुष्प–८२

श्री समन्तभद्राय नमः

श्री पं० दीपचन्दजी शाह (काशलीवाल) कृत

अनुभव प्रकाश

मङ्गलाचरण

गुण अनन्तमय परमपद, श्री जिनवर भगवान् ।
ज्ञेय *लखत हैं ज्ञानमें, अचल सदा ÷निजथान ॥१॥

परमदेवाधिदेव परमात्मा परमेश्वर परम पूज्य अमल अनुपम आनन्दमय अखण्डित भगवान निर्वाणनाथको नमस्कार करि =अनुभव प्रकाश ग्रंथ करौं हौं, जिनके प्रसादतैं पदार्थका स्वरूप जानि निज आनन्द उपजै ।

प्रथम यह लोक षट्द्रव्यका बन्या है । तामें षट्

---

* मु० लक्ष्य । ÷ मु० प्रतिमें 'निजथान' के स्थानमें 'निजस्थान' कर दिया है जिससे छन्द भङ्ग हो जाता है । = क. अनुभौ ।

द्रव्यसौं भिन्न सहज स्वभाव सत्-चिद्-आनन्दादि *अनन्त गुणमय चिदानन्द है। अनादि कर्मसंजोगतैं अनादि अशुद्ध होय रह्या है। तातैं पर पदमें आपा मानि परभाव किये, तातैं जन्मादि दुःख सहे हैं। ऐसी दुःखपरपाटी अपने अशुद्ध चिन्तवनतैं पाई है। जो अपने स्वरूपकी संभार करै तो एक छिनमें सब दुःख विलय (विनश) जाय। जैसा कछु सासता (शाश्वत) आनन्दमय परम पद है, ताकौं पावै, ताकी संभारके करत ही स्वरूप प्राप्ति होय है, यह उपाय दिखाइये है। ये ही परिणाम उलटि परमें आपा मानि स्वरूपका विस्मरण करि रह्या है। ये ही परिणाम सुलटि स्वरूपकौं आपा मानि परका विस्मरण करै, तौ मुकति (मुक्ति) कामिनीका कंत (कन्थ) होवे।

ऐसे परिणाममें कछु कलेश तौ नाहीं। ये परिणाम क्यों×न करै ? ताका समाधान—अनादि अविद्यामें पड़्या है। मोहकी गांठि निवड़ पड़ी है। आतमा और परका एकत्व-सन्धान हो रह्या है। जैसें कोई पुरुष अफीमके अमलकौं चढ़्या है, वह दुःख पावै है, परि छूट न सकै, काहेतें बहुत चढ़्या है ? छूटें सुख है, कलेश नाहीं, परि वाइडि आवै सौं (वाय व वात रोग होनेसे) छे ही छे। तैसें पर मोह सौं बंध्या है, छूटें सुख है, परि न छूटे है, अनादि संयोग छूटतैं सुख हो है, परि झूठे ही दुख माने है। याकै मेटवे कौं प्रज्ञाछैनी

* मु० सच्चिदानन्दाद्यनन्त। × मु० कौन।

आत्मा-परके एकत्वसन्धानमें डरै, चेतना अंश अंश अपना जानै, जामैं जड़ (का) प्रवेश नाहीं। कैसे जानै ? सो कहिये है:—

यह परमैं आपा जानै है, सो यह जान (जानना) निज बानिगी है। इस निज (ज्ञान) बानिगी कौं बहुत संत पिछानि पिछानि अजर अमर भये सो कहने मात्र ही न ल्यावै, चित्तको चेतनामें लीन करै, स्वरूप अनुभवका विलास सुखनिवास है, ताकौं करे, सो कैसें करै सो कहिये है:—

निरन्तर अपने स्वरूपकी भावनामैं मग्न रहै, दर्शन ज्ञान चेतनाका प्रकाश उपयोग द्वारमैं दृढ़ भावै। चिद्परिणतितैं स्वरूप रस होय है। द्रव्य गुण पर्यायका यथार्थ अनुभवना अनुभव है। अनुभवतैं पंच परमगुरु भये व होंहिंगे, (सो) प्रसाद अनुभवका है। अनुभव आचरणकौं अरिहंत सिद्ध सेवैं हैं। *अनुभवमें अनन्तगुणके सब रस आवैं हैं सो कहिये है।

ज्ञानका प्रकट प्रकास अनन्त गुण÷कौं परिणति परणवै, वेदै, आस्वाद करै। तहाँ अनुपम आनन्द फल निपजै

---

* गुण अनन्तके रस सबै, अनुभौ रसके माँहि। यातैं अनुभौ सारिखो, और दूसरो नांहि ॥ १५३ ॥ पंच परम गुरु जे भये, जे होंगे जगमाँहि। ते अनुभौ परसादतैं, यामें धोखो नांहि ॥ १५४ ॥

—ज्ञानदर्पण।

÷ ख और मु० प्रतिमें 'गुणकौं' वाक्यके पश्चात् 'जाने ज्ञान विशेष गुणकौं' इतना पाठ अधिक पाया जाता है।

ऐसे ही दरसन कौं परिणति परणवै, वेदै, आस्वाद करै सुखफल निपजै। याही रीति सब गुणकौं परणवै, वेदै, आस्वादै, आनन्द अनन्त अखण्डित अनुपम रस लियैं उपजै। तातैं सब गुणका रस परणतिके द्वारा अनुभव करवैमें आया। ऐसैं ही द्रव्यकौं परणवै, वेदै आस्वादै आनन्द पावै। तब परिणति द्वारा द्रव्य अनुभव न भया। अनुभव *प्रकास गुण परिणति एक रस भये होय है। वस्तुका स्वरूप है। सो गुणचेतनाका संक्षेपमात्र वर्णन कीजिये है।

सकल गुणनमें ज्ञान प्रधान है। काहेतैं? ज्ञान विशेष चेतना है। ज्ञान सबका ज्ञाता है। सूक्ष्म न होता तौ, इन्द्रिय ग्राह्य होता, तातैं सूक्ष्म करि ज्ञानकी सिद्धि, सत्ता गुण विना सूक्ष्म सासता न होता। वीर्यगुण विना सत्ताकी निष्पत्ति सामर्थ्य कहां पाइये? अगुरुलघु विना वीर्य हलका भारी भये जड़ता कौं धरता। प्रमेय गुण विना अगुरुलघुका प्रमाण कहां पाइये? अप्रमाण भये कौन कौन मानता? वस्तुत्व विना प्रमाण किसका कहिये? अस्तित्व विना वस्तुत्व किसके आधार कहिये? प्रदेशत्व विना अस्तित्व किसका निरूपिये? प्रभुत्व विना प्रदेश-प्रभुता कहांतैं रहती? विभुत्व विना प्रभुत्व सबमें कैसैं व्यापता? जीवत्व विना विभुत्व अजीव होता, चेतना विना

* मू०, ख. 'का रस' पाठ पाया जाता है।

जीवत्व कहां वर्तता ?

ज्ञान विना चेतनका विशेष जान्या न परता, दर्शन विना सामान्य विशेष ज्ञान न रहता, सर्वज्ञता विना दर्शनकौं न जानता ? सर्वदर्शित्व विना ज्ञानकौं न देखता ? चारित्र चेतना विना दर्शन ज्ञान की थिरता कहां रहती ? परिणामात्मकत्व विना चिदचिद्विलास कहां तैं करता ? अकारणकार्यत्व विना परकार्य भये, निजकार्य कौ अभाव होता। असंकुचितत्व विना अविनाशी चेतना विलास संकोच न आवता। त्यागोपादान शून्यत्व विना ग्रहण त्याग लग्या रहता। अकर्तृत्व विना कर्मका कर्ता होता। अभोक्तृत्व विना परभाव भोगवता। असाधारण विना चेतनाचेतनका भेद न परता। साधारण विना कोई पदारथ सत् होता, कोई असत् होता। तत्त्व विना वस्तु स्वरूप न धरता। अतत्व विना परका तत्त्व आवता। भाव विना स्वभावका अभाव होता। भाव भाव विना अतीतका भाव अनागतमें न रहता। भावाभाव विना परिणमन समय मात्र न संभवता। अभाव भाव विना अनागत परिणमन न आवता। अभाव विना कर्मका सद्भाव जान्या परता। *सर्वथा अभाव अभाव विना अतीत मैं कर्मका अभाव था, सो अनागत अभाव मैं ऐसा न होता। कर्ता विना निज कर्मका कर्ता न होता। कर्म विना स्वभाव कर्मका अभाव होता। करण विना परिणमन करि

---

* क. मु० प्रतिमें 'सर्वथा' पाठ नहीं है।

स्वरूपका साधन था सो न होता। सम्प्रदान विना परिणति स्वरूपमें आप समर्पण न करता। अपादान विना आपतैं आप-करि आप न होता। अधिकरण विना सबका आधार न होता। स्वयंसिद्ध विना पराधीनता आवती। अज विना उपजता। अखण्ड विना खण्डितता पावता। विमल विना मल होता। एक विना अनेक होता। अनेक विना गुण अनेकका अभाव होता। नित्य विना अनित्य होता। अनित्य विना षट् गुणी वृद्धि हानि न होय। जब (वृद्धि हानि न होय तब) अर्थक्रियाकारक स्वभावका सिद्धि न होय। भेद विना अभेद द्रव्य गुण होय। अभेद विना एक वस्तु न होय। अस्ति विना नास्ति होय। नास्ति विना परकी अस्तता होय। साकार विना निजाकृति न होय। निराकार विना पराकार धरि विनाश पावै। अचल स्वभाव विना चल होय। ऊर्ध्वगमन स्वभाव विना उच्च पद न जानौं परै। इत्यादि अनन्त विशेषण ज्ञानी अनुभव करै। सो निज जानि कैसें होय? सो कहिये है—

प्रथम, अनादि परमें अहं ममरूप *मिथ्यात्वका नास करै। पीछे, पर-रागरूप भाव विध्वंस करै। जब पर-राग मिटै तब वीतराग होय। जब पर प्रवेशका अभावभाव भयौ, तब स्वसंवेदनरूप निज ज्ञान होय। अथवा अपने द्रव्य गुण पर्यायका विचार करि निजपद जानै। अथवा उपयोग मैं÷ज्ञान

---

* क, मु० 'मिथ्या'। ÷ मु० 'जान'।

रूप वस्तुकौं जानै। अनन्त महिमा भण्डार सार अविकार अपार शक्ति मण्डित मेरा स्वरूप *है, ऐसा भाव प्रतीति करि करै। ध्यान धरै निश्चल होय यह जानि जानै। निजरूप जानि ही कौं अनूप पदका सर्वस्व जानै। इस स्वरूपकी जानि विना परकी मानि करि संसारी दुखी भये। सो परकी मानि कैसें मिटै? सो कहिये है:—

भेदज्ञानतैं पर-निजका ×अंश न्यारा न्यारा जानैं। मैं उपयोगी, मेरा उपयोगित्व ग्रंथ गावैं हैं। मैं देखा, जानौं हौं। यह निश्चय ठीक किये आनन्द बढ़ै। पर-परिणति मेरी करी है। न करौं तौ न होय मानि, मेरी परमें मैं करी मानि, अब मैं निजमें मानौं, तौ मानत प्रमाण ही मुक्ति तैं याही सगाई भई, अवश्य वर हौंगा। करमके भरमका विनाश निज शरम (सुख) पाये है। सो निज शरम कैसैं ÷पाइये? सो कहिये है:—

मेरा अनन्त सुख मेरे उपयोगमैं है। सो मेरा उपयोग तौ सदा मैं धरों हौं। मैं उपयोग कौं भूलि अनुपयोगमें अनादि रत भया, सुख स्थानक चेतना उपयोग भूल्या, सुख कहां तैं होय? अब मैं साक्षात् उपयोग प्रकाश ठावा (योग्य स्थान) किया। काहे तें? अहं नर ऐसी मानि, नर शरीर जड़ मैं तौ

---

* मु० प्रतिमें यह पाठ नहीं है। × प्राप्त प्रतियोंमें 'अंग अंग' पाठ पाया जाता है। ÷ क० प्रतिमें यह पाठ नहीं है।

न होय, मेरे उपयोग तैं भई है। सो ऐसी मानिका करणहार मेरा उपयोग अशुद्ध स्वांग धरि बैठा है। जैसें कोई एक नटवा वरद (वलद—बैल) का स्वांग ल्याया है, पूछै है, परमैं आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या है, *अब मैं नरकी परजाय कब पावौंगा? झूठैं ही पूछै है, नर ही है। भूलि तैं यह रीति भई है। तैसैं चिदानन्द आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या है, अपनी आप भूलि मेट, सदा उपयोग धारी आनन्द रूप आप स्वयमेव ही बन्या है। विना यत्न, तातैं निज निहारना ही कार्य है। निज श्रद्धा आये निज अवलोकन होय है। यह श्रद्धा काहेतैं होय है? सो कहिये हैः—

प्रथम सकल लौकिक रीति तैं पराङ्मुख होय, निज विचार सन्मुख होय, कर्म-कन्दरा विषैं छिप्या है, ÷चिदानन्द-राजा। कर्म-कन्दरा = तीन हैं। नोकर्म प्रथम गुफा, दूजी द्रव्य-कर्म गुफा, तीजी भाव-कर्म गुफा। प्रथम, नोकर्म गुफामें परणति पैठी कि हमारा राजा दिखै, तहां उसको कछु न दीसै, चक्रति होय रही, तब फिरिनै लगी, "तब श्रीगुरुनैं कह्या कि, तूं कहा ढूंढै है? तब वह कहने लगी, मेरे राजाकौं देखौं हौं सो न ꣸पाया। तब श्रीगुरुनैं कह्या तेरा राजा यहां ही है, मति फिरै, यहां तैं तीसरी गुफा है, तहां वसै है। ताकै हाथ

* मु० प्रतिमें यह पाठ नहीं है। ÷ यह मु० प्रतिका पाठ है।

= क. ख प्रतिमें 'निजराजा' पाठ दिया है।

꣸ यह वाक्य क. ख. प्रतियोंमें नहीं है।

की डोरी इस गुफा तक आई है। सो यह डोरी उसके हाथकी हलाई हालै है। जो वह न होय तौ डोरी आपसैं न हालै है। तातैं विचारि इस शक्ति या डोरीकी अनश्रुत (सीधमें) चली जाना। कर्ममैं देखि इसकी क्रिया डोरी कौं कौन हलावै है? द्रव्यकर्म गुफा अंदरि प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग वाहीके निमित्ततैं नाव परचा है, वाकी परिणति भई जैसी जैसी वर्गणा बंधी, वहां भी उसकी बणाई सत्तासौं द्रव्य कर्म नाव पड्या व उसके भावौंके निमित्त तैं नानाकर्म पुद्गल नैं नाम पाया। भाव कर्म गुफा मैं राग-द्वेष-मोहका प्रकाश मैं छिप्या स्वरूप रहै है। वह प्रकाश तेरे नाथका अशुद्ध स्वांग है। तामैं तू खोजि, भय मति कर निःशङ्क जायहु, यह राग-द्वेष-मोह की डोरीके साथ जाय खोजि, जिस प्रदेश तैं उठी सो ही तेरा नाथ है। डोरी कौं मति देखै। जिसके हाथमें डोरी तिसकौं लागि तुरत मिलैगा। अपनी ज्ञान महिमाको छिपाय वैठा है। तू पिछानी, यह गुप्त ज्ञान भया तौऊ नाथ छिप्या नहीं। चेतना प्रकाशरूप चिदानन्द राजा पाय सुख पावैगी। निज शर्मका उपाय कह्या। यह निज सुख तौं निज उपयोगमें कह्या। दुर्लभ क्यौं भया है? सो कहिये हैः—

यह परिणाम भूमिका मैं मोह मदिरा पीय अविवेक मल्ल उन्मत्त होय विवेक मल्लकौं जीति जयथंभ रोपि ठाढ़ा (खड़ा) भया है जोरावर। तातैं आपकी सुखनिधिका विलास न करणे दे।

विवेक मल्लका जोर भये अविवेक हण्या जाय। तव निज निधि विलसिये। पर-रुचि खोटा आहार सेवनतैं मिथ्याज्वर भया। तव विवेक निर्बल भया। तातैं स्वआचार पारा श्रद्धा बूटीके पुटसौं सुधर्या, ताका सेवन करै, तव विवेक मल्ल मिथ्याज्वर मेटि सवल होय अविवेककौं पछारै। तव आनन्द निधिका विलास होय। स्वआचार कहा। श्रद्धा कैसैं होय? सो कहिये है—

इस अनादि संसार मैं पर विचार अनादि किया। मेरी ज्ञानचेतना अशुद्ध भई। अव स्वआचार पारा सेवन करिये तौ, अविनाशी पद भेंटियै। मैं कौन हौं? मेरा स्वरूप कहा? कैसैं पाईये? प्रथम पद अपनेका उपयोग प्रकाश है। दर्शन ज्ञान उपयोग चारित्र उपयोग। दर्शन देखता है, ज्ञान जानता है, चारित्र परिणाम करि आचरिता है। ऐसा ज्ञेयका देखना जानना आचरणा अनादि किया अपने विशुद्ध पदमैं उपयोग न दिया। अतीन्द्रिय सुखके लाभ विना रीता रह्या। अनन्ते तीर्थङ्कर भये तिनहू नैं स्वरूप शुद्ध किया, अनन्त सुखी भये। अव मौकौं भी ऐसे ही स्वरूप शुद्ध करना है।

मुनिवरजन निरंतर स्वरूपसेवन करैं हैं। तातैं अपना त्रैलोक्य पूज्य सवतैं उच्चपद अवलोकि कार्य करना है। कर्म-घटामैं मेरा स्वरूप-सूर्य छिप्या है कछु मेरे स्वरूप-सूर्यका प्रकाश कर्म-घटाकरि हण्या न जाय, आवर्या है (व्यक्त नहीं हुआ

है)। वारे ही वारे घटाका जोर है (सो) मेरे स्वरूपकूं हणि न सकै। चेतनतैं अचेतन न करि सकै। मेरी ही भूलि भई। स्वपद भूल्या। भूलि मेटी जवही मेरा स्वपद ज्योंका त्यों वन्या है।

जैसें कोई रत्नद्वीपका नर था। तहां रत्नके मन्दिर थे। रत्न समूहमैं रहै था। *परख न जानै था। और देश मैं आया, कणगती (कमरमैं वांधनेका कटिसूत्र या करधनी) मैं हरिकान्तमणि लगी थी। एक दिन सरोवर स्नान÷कौं गया। जौंहरी नें देख्या। हर्‍या पाणी इसकी मणिप्रभा तैं सरोवरका भया। तव उस पासि एक नग ले राजा समीप उस नर कौं लेगया। एक नगके मोल सौं कोडि मंदिर भरै एती दीनार दिवाई। तव वह नर पछताया। मेरा निधानमैं न पिछान्या। तैसें अपना निधान आप समीप है। पिछानत ही सुखी होय है। मेरा आत्मा ज्ञान दर्शनका धारी चिदानन्द है। मेरा स्वरूप अनन्त चैतन्यशक्ति करि मण्डित अनन्त गुणमय है। मेरे उपयोगके आधीन वण्या है। मैं मेरे परिणाम उपयोग मेरे स्वरूपमें धरूंगा। अनादि दुःख मेटूंगा। परमपद भेटूंगा। यह सुगम राह स्वरूप पावनेका है। दृष्टि

---

* परिक्षा, जाचना, अथवा गुण और दोषकी ठीकठीक निर्णायक दृष्टि।

÷ स० प्रतिमें यह पाठ निम्न रूपमें दिया है "सो एक दिन सरोवरको पाणी पीवन कौं गयौ, तव उस नर कौं जौंहरी ने देखा, पाणी हरा भया माव जाण्या याके पास नग है, तव जौंहरी ने पिछाण्या यह परख न जानै है।"

के गोचर करना ही दुर्लभ है। सो सन्तों ने सुगम कर दिया है। उनके प्रसादतैं हमोंने पाया है॥

सो हमारा अखण्ड विलास सुख निवास इस अनुभव प्रकाशमैं है। वचनगोचर नाहीं, भावनागम्य है। यह मेरा ज्योतिःस्वरूपका प्रकाश मैं हौं, प्रगट इस घट मैं प्रकाशता है, सो देखता है। छिप्या नहीं, गोप्य कैसैं मानौं? छती वस्तु कौं अनछती कैसैं करौं? छती अनछती न होती है। पीछे झूठैं ही छती कौं अनछती मानी थी। तिसका अनादि दुःख फल भया था। शरीर कौं आपा कैसैं मानिये? यह तो रक्त वीर्य तैं भया, सात धात जड़, विजातीय विनश्वर पर [है] सो मेरी चेतना यह नाहीं। ज्ञानावर्ण वर्गणा विजातीय स्वरूप कौं [धरै है] आवर्ण, अचेतन, बंधक, विनश्वर, रसविपाक हीन है, सो मेरी नाहीं, विभाव स्वभाव मलिन करै, कर्म उदयतैं भया, मेरा नाहीं। मेरा चेतनापद मैं पाया। ज्ञान लक्षणतैं लक्ष्य पिछानि स्वरूप श्रद्धातैं आनन्दकन्दकी केली करि सुखी हौं। सो आनन्दकन्दकी केली स्वरूप श्रद्धातैं कैसें होय? सो कहिये है:—

अनन्त चैतन्य चिन्हकौं लिये अखण्डित गुणका पुंज पर्यायका धारी द्रव्य ज्ञानादिगुणपरिणति पर्यायअवस्थारूप वस्तुका निश्चय भया॥

---

* यह वाक्य 'ख' प्रतिमें नहीं है।

ज्ञान जाननै मात्र, दर्शन देखवे मात्र, सत्ता अस्ति मात्र, वीर्य वस्तु निष्पन्न सामर्थ्य मात्र, केवल ऐसा प्रतीत्य भाव रुचि भावकी आस्तिक्यता श्रद्धान श्रद्धा कहिये। तिसतैं उपजी आनन्द कन्द मैं केलि करि सुखी हीं। जान्या आनन्द ज्ञानानन्द, स्वरूप देखै आनन्द सो दर्शनानन्द, परिणया आनन्द चारित्रानन्द। ऐसैं सब गुणानन्द तिसका मूल निजस्वरूप आनन्द कन्द। तिसकी केलि स्वरूप मैं परिणति रमावणी। तिसतैं सुख समूह भया है। और इस तैं ऊंचा उपाय नाहीं। भव्यनकों शिवराह सोहली (सहज) यह भगवंत नैं बताई है। भगवन्तकी भावना तैं सन्त महन्त भये। मैं भी याही भावना का अवगाढ़ थंभ रोप्या है। सम्यग्दृष्टीकै ऐसा निरन्तर अभ्यास रहै। कर्म*अभावतैं ज्ञान स्वरसमण्डित सुखका पुंज प्रगटै तव कृतकृत्य होय है। इस आतमका स्वरूप गोप्य हो रहा है। साक्षात् कैसैं होय? भावना परोक्ष ज्ञान करि बढ़ाई है। सो कस सिद्ध होय? सो कहिये है—

जैसैं दीपकके पांच पड़दे हैं। एक पड़दा दूरि भये, झीणा बारीक उद्योत भया। दूजा पड़दा दूरि भया, तव चढ़ता प्रकाश भया। तीजा गये चढ़ता भया। चउथा गये अधिक चढ़ता भया। पांचवाँ गया तव निरावरण प्रकाश भया। ऐसैं ज्ञानावरणके पांच पड़दे हैं।

---

* ख 'निज स्वभावतैं'।

मतिज्ञानावरण गये स्वरूपका मनन किया। अनादि परमनन था, सो मिटचा। अनन्तर ऐसी प्रतीति आई, जैसैं कोई पुरुष दरिद्री है, करजको रोका है, उसके चिन्तामणि है, तब काहू नैं कह्या, इस चिन्तामणिके प्रभाव तैं निधि विस्तरि रही है, काहू कौं फल दीया था, सो अब तुमहु निधि तौं ल्यौ। साक्षात्कार भये सब फल पावहुगे। प्रतीतमैं चिन्तामणि पायेका सा हर्ष भया है। ऐसैं मतिज्ञानी स्वरूपका प्रभाव एकदेश ही मैं ऐसा जागा केवलज्ञानका शुद्धत्व प्रतीति द्वार आया सो अशुद्धत्व अंशहु अपना न कल्पै है। स्वसंवेदन मतिज्ञान × करि भया है। ज्ञानप्रकाश अपना है ऐसैं श्रुत मैं विचारैं, मैं मनन किया ॥

सो कैसा हौं ? मैं ज्ञानरूप हौं, आनन्द रूप हौं ऐसैं च्यारि ज्ञान मैं स्वसंवेदन परिणतिकर तौ प्रत्यक्ष है। ज्ञान अवधि मनःपर्यय पर + के जानवे तैं एकदेश प्रत्यक्ष। काहे तैं सर्वावधिकरि सर्ववर्गणा परमाणु मात्र देखैं, तातैं एक देश प्रत्यक्ष। मनःपर्यय हू पर-मनकी जानैं, तातैं एकदेश प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है। अपना जानना ज्ञानमात्र वस्तु मैं जो प्रतीति भई, तातैं सम्यक् नाम पाया। ज्ञानमात्र वस्तु तौ केवलज्ञान भये शुद्ध, जहां तक केवल नहीं तहां तक गुप्त है, केवलज्ञान मात्र वस्तुकी प्रतीति प्रत्यक्ष करि करि स्वसंवेदन वढ़ावै है ॥

× मु० प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है। + क, ख 'मति द्वारि'।

+ मु० प्रतिमें 'पर' पाठ नहीं है।

जघन्य ज्ञानी कैसैं प्रतीति करै ? सो कहिये है—

मेरा दर्शन ज्ञानका प्रकाश प्रदेश मेरे तैं उठै है। जानपना मेरा मैं हौं। ऐसी प्रतीति करता आनन्द होय सो निर्विकल्प सुख है। ज्ञान उपयोग आवरणमें गुप्त है। जाननेमें आवरण नाहीं। काहे तें? जेता अंश आवरण गया, तेता ज्ञान भया, तातैं ज्ञान आवरणतैं न्यारा है, सो अपना स्वभाव है। जेता ज्ञान प्रगट्या तेता अपना स्वभाव खुल्या, सो आपा है। इतना विशेष—आवरणकौं गयेहू परमें ज्ञान जाय, सो अशुद्ध। जो जेता अंश निजमैं रहै, सो शुद्ध। तातैं गुप्त केवल है। परि (परन्तु) परोक्ष ज्ञानमें प्रतीति निवारणकी करि करि आनन्द वढ़ाइये। *ज्ञान शुद्ध भावनातैं शुद्ध होय, यह निश्चय है। +उक्तं च—"या मतिः सा गतिः" इति वचनात्।

अपना स्वरूप साक्षात् कैसैं होय ? सो कहिये है:—

प्रथम, निर्ममत्वभावतैं संसारके भाव अधो करै। कैसैं करै सो कहिये है:—दृश्यमान जो सब रूपी जड़, तातैं ममत्व न करना। काहेतैं भीत जड़ तामैं आपा मानैं सुख कहा ? ऐसैं शरीर जड़ तामें ममत्व न करना, काहेतैं आपा मानैं सुख ×कहा अर राग द्वेष मोहभाव, असाता, तृष्णाभाव, अविश्रामभाव, अस्थिरभाव, दुखःभाव, आकुलभाव, खेदभाव, अज्ञानभाव यातैं हेय

* मु० ज्ञान। + मु० प्रतिमें यह वाक्य नहीं है।

× मु० प्रतिमें "शरीरादि जड़ तामैं आपा मानैं सुख कहा" पाठ है।

हैं। आत्मभाव, ज्ञानमात्रभाव, शान्तभाव, विश्रामभाव, स्थिरताभाव, अनाकुलभाव, आनन्द भाव,*तृप्तिभाव, निजभाव उपादेय हैं॥

आत्मपरिणति मैं आत्मा है। मैं हौं ऐसी परिणति करि आपा प्रगटै। आपा मैं परिणति आई मैं हौं पणा की मानि स्वपदका साधन है। मैं मैं परिणाम मैं कहे हौं। मैं मैं परिणामोंनै स्वपदकी आस्तिक्यता करि स्वपद परिणाम विना ठावा (योग्य स्थान) न होय। काय चेष्टा नहीं। वचन उच्चारणा नहीं। मन चिन्तवन नहीं। आत्म पदमैं आपकी मग्नता स्वरूप-विश्राम, आनन्दरूप पद मैं स्थिरता, चिदानन्द, चित्परिणतिका विवेक करना। चित्परिणति चिद्मैं रमै, आत्मानन्द उपजै। मनद्वार विवेक होय परि मन उरै रहै। मन पर है, ज्ञान निज-वस्तु है। सो ऐसैं विचारतैं दूरि रहै है। काहे तैं? परमात्म पद गुप्त है। ताकी मन व्यक्त भावना करत सकै है। काहे तैं? परमात्म भावना करत करत परमात्म पद नजीक आवै, तब परमात्माके तेज तैं मन पहल्यौंही मरि निवरै (निवृत्त होय) है। काहेतैं? सूरिमा (के) तेजतैं कायर विना संग्राम ही मरै, सूर्य के तेजतैं अन्धकार पहल्यौं ही नाश होय जाय, तैसैं जानियौ॥

चिदानन्द भावनातैं चित्परिणति शुद्ध होय। चित्परिणति शुद्ध भये चिदानन्द शुद्ध होय है। अनात्म परिणाम मेट आत्म-परिणाम करना हो कृतकृत्यपणा है। योगीश्वर भी इतना करै

---

* मु० यह वाक्य क० ख० प्रतियोंमें नहीं है।

है। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि, याहीके निमित्त हैं। स्वरूप परिणाममैं अनन्त सुख भया। निजपद (की) आस्तिक्यता भई। अनुपमपदमैं लीनता भई। एक स्वरस भया, शुद्ध उपयोग भया। अनुभव सहजपदका भया। महिमा अपार आप परिणामकी है। परिणाम आपके किये विना परमेश्वर परपरिणामतैं गोता खाय हैं। अपने परिणाम स्वरूपानन्दी भये, परमेश्वर कहाया। ऐसा प्रभाव आत्मज्ञान परिणामका है। अपूर्वलाभ अविनाशीपदका भया परिणमनतैं। सो परिणाम कैसैं स्वरूपमैं लागै? सो कहिये है—

*परसूं पराङ्गमुख होय बारम्बार स्वपद अवलोकनिके भाव करै। दर्शन-ज्ञान-चारित्र चेतनाका प्रकाश ठावो करि करि स्वरूप परिणति करै। आतम-ज्योति अनात्मा सौं भिन्न अखण्ड प्रकाश आनन्द चेतना स्वरूप चिद्विलासका अनुभवप्रकाश ÷परिणाम जातैं उठ्या, तामैं परिणाम लगावै। ज्ञानवारैं परिणाम न करै। परिणाम तरंग चेतना अंग अभंगमैं अन्तरंग लीन भया करै। अमरपुरी निवास निजबोधके विकासतै है। निश्चय, निश्चल, अमल, अतुल, अखण्डित अमिततेज अनन्त गुणरत्न-मण्डित ब्रह्माण्डकी लखैया ब्रह्मपद पूर्णपरम चैतन्य ज्योति-स्वरूप अरूप अनूप त्रैलोक्यभूप परमात्मरूप पदपाय पावन

* मु० प्रतिमें यह पाठ नहीं है।

÷ इसके बाद मु० प्रतिमें "परिणाम करि प्रकाशै" वाक्य पाया जाता है।

होय रहै, सो अनुभवकी महिमा है* ॥

यथार्थ ज्ञान, परमार्थ-निधान, निज-कल्याण, शिवथान रूपभगवान्, अमलान, सुखवान्, निर्वाणनिधि, निरुपाधि, निज समाधि, साधिये, आराधिये। अलख, अज, आनन्द, महागुण वृन्दधारी, अविकारी, सब दुःखहारी, बाधारहित, महित, सुरस, रस सहित, निरंशी, कर्मको विध्वंशी भव्यको आधार, भव-पार को करणहार, जगतसार, दुर्निवार दुःख चूरै। पूरै पद आप, भवताप पुण्य-पापकों मिटायकैं, लखाय पद आतम दरसाय देत चिदानन्द, सदा सुख कन्द, निरफंद लखावै, अविनाशी पद पावै, लोकालोक झलकावै, फेरि भवमें न आवै, सब वेद गुण गावै। ताहि कहां लौ बतावै ? बैन (वचन) गोचर न आवै। यह परम तत्त्व है, अतत्त्वसों अतीत, जामैं नांहि विपरीत करणी, भव दुःखन की भरणी, हित हरणी अनुसरणी, अनादिकी ही मोह राजा नैं बनाई। जग जीवनकों भाई, दुःखदाई ही सुहाई, या अज्ञान अधिकाई, जामैं लगी बहु काई। ज्ञान रीति उरि आनी। विपरीत करणकों भानी। साधकता साधि महा होइ। निज ध्यान आनन्द सुधाको ह्वै पान। मोक्षपदको निदानी इदानीं ही समयं

* दरसन ज्ञान शुद्धचारितको एक पद, मेरो है सरूप चिन्ह चेतना अनन्त है, अचल अखण्ड ज्ञान-ज्योति है उद्योत जामैं, परम विशुद्ध सब भावमें महन्त है। आनन्दको धाम अविराम जाको आठों जाम, अनुभवे मोक्ष कहे देव भगवन्त है, शिवपद पायवे को और भांति सिद्धि नांहि, यातैं अनुभवो निज मोक्ष तियाकन्त है ॥ ४५ ॥ (ज्ञान-दर्पण।)

मैं स्वरशी वशी भये हैं।

इन्द्रिय चोर कसी, काय, निरताय निहार्यों पद परमेश्वरस्वरूप अघट घटमैं व्यापक अनूप चिद्रूपकौं लखायो। भ्रम भावकौं मिटायो। निज आतम-तत्त्व पायो। दरसायो देव अचल अभेव टेव। सासतीको निवासी सुखराशी, भवसौं उदासी हो लहै। बाहरि न वहै। निज-भाव ही कौं चहै। स्वपदका निवास स्वपदमें है। बहिरंग संग मैं ढूंढ़ि ढूंढ़ि व्याकुल भया जैसैं मृग वासकौं (सुगन्धिको) ढूंढै, कहूं परजायगां (दूसरी जगह) न पावै, तैसैं पद आपकौं परसैं न पावै॥ मोहके विकारतैं आपा न सूझै। संतनके प्रतापतैं गुण अनन्तमय चिन्दानन्द परमात्मा तुरन्त पावै॥ पर-पद आपा जहां ताईं तहां ताईं सरागी भया व्याकुल रहै। ज्ञान दृष्टिसौं दर्शन-ज्ञान-चारित्रकौं एक पद स्वरूप अवलोकन करत ही पर मानिकी तुरत हानि होय। राग विकार मिटत ही वीतराग पद पावै। तब अनाकुल भया अनन्त सुख रसास्वादी होय आपा अमर करै। जैसैं कोई राजा मदिरा पीय निन्द्य स्थानमें रति मानै, तैसैं चिदानन्द देहमैं रति मानि रह्या है। मद उतरै राज पदका ज्ञान होय राजनिधान विलसै, स्वपदका ज्ञान भये सच्चिदानन्द सम्पदा विलसै॥

प्रश्नः—ज्ञान तौ जानपणा रूप है, आपकौं क्यौं न जाणैं? समाधानः—जानपणा अनादि परसौं व्यापि, पर ही का हो है। अब ऐसा विचार करे तैं शुद्ध होय कि यह परका

जानपणा भी ज्ञान विना न होय । ज्ञान आत्मा विना न होय । तातैं पर-पदका जाननहारा मेरा पद है । मेरा ज्ञान मैं हौं । पर-विकार पर हैं । 'जहां जहां जानपणा, तहां तहां मैं ऐसा दृढ़ भाव सम्यक्त्व है' सो सुगम है, विषम मानि रह्या है । मोहमद वार्यौ ज्ञान अमृत पीय उतरि ब्रह्मपदकौं सँभारि, डारि भवखेद, भेद पाय निज सौं, अभेद आप पदकौं पिछानि, त्यागि परवाणी, जाणि चिदानन्द, मोह मानि भानि कैं, गुणकौ ग्राम अभिराम, सुखधाम रूप सो ही है स्वरूप । सो ही भाव मोक्षकौ उपाय उपेयकौं साधैं, शुद्ध आतम आराधै । यो ही शिव-पंथ निर्ग्रन्थ बहु साधि साधि, समाधिकौ पाय, परम पदकौं पहुंचे । अपना चेतना प्रकाश मोह विकारकौं पाय, मैला भया भेद ज्ञान जड़ चेतनका निरवारा करै । ताकौं उरमैं धरि करि निज ज्ञान-का अभ्यास वारम्वार सार अविकार अपना अखण्ड रूप जानि अनुभव उर आनि महा मोह-हठ मानि स्वरूपरस अपने स्वभाव-मैं है । तिस स्वभावकौं निज उपयोगमैं ठावा करै । स्वरूपकी उपयोग शक्ति कर्ममैं गुप्त भई तौ कहा शक्तिकौ अभाव मानिये ?

जसे काहूकौ पुत्र है, बाजारमैं काहू नैं बूझो, तौ कहै हमारै पुत्र है । अभाव न कहै । व्यवहार में हू यह रीति है । छतै कौं अनछतौ न करै । चिदानन्द तेरौ अचिरज आवतु है । दर्शन ज्ञान शक्ति छती ताकौं अनछती करि राखी है । जैसैं लोटन जड़ी कौं (जटामांसी जिसको बिल्ली लोटन कहते हैं)

देखि बिल्ली लोटै है, तैसैं मोहतैं संसार भ्रमण है। नैक हू इतै स्वरूपमैं आवै तो त्रिलोकको राज्य पावै। सो तौ दुर्लभ नाहीं॥ जैसैं नर पशुका स्वांग धरै तो पशु न होय, नर ही है। तैसैं आत्मा चौरासीके स्वांग करै तौऊ चिदानन्द ही है*। चिदानन्दपणो दुर्लभ नांहीं। जैसैं कोई काठकी पूतरीकौं सांची नारी मानि वाकौं बुलावै, चाहि करै, वाकी सेवा करै पीछे जानैं काठकी तब पछितावै तैसैं जड़को सेवा करै है। अज्ञानी भयाजड़मैं सुख कल्पै है। ज्ञानी होय, जब झूठ मानि तजै।

जसैं मृग मरीचिकामैं जल मानै है, तैसैं यह परमैं आपा मानै है। तातैं सांचे ज्ञानतैं वस्तु जानौ, तब ही भ्रम मिटै। बारम्बार सार सांचो उपदेश श्रीगुरु कहैं हैं। आपहू जानै है। ऐसो अविद्याको आवरण है ताकरि झूंठको सांच मानि है। राह्य त्रिंवक्र (तीन जगहतैं बांकी टेढ़ी ऐसी रस्सी) जेवरी मैं सर्प त्रिकाल नाहीं तैंसैं ब्रह्ममैं अविद्या नाहीं। सो सारे समुद्रके जल सैं धोयेहू देह ×अपावन है। ताकौं पावन मानि रह्यो है।

---

* जैसैं नर कोउ वेप पशुके अनेक धरै, पशु नहीं होय रहै यथावत् नर है। तैसैं जीव चारगति स्वांग धरै, चिर ही को तजै नाहीं एक निज चेतनाको भर है। ऐसी परतीति किये पाइये परमपद, होइ चिदानन्द शिवरमणिको वर है, सासतौ सुथिर जहाँ सुखको विलास करै, जामैं प्रतिभासै जेते भाव चराचर है॥ ४०॥ —ज्ञानदर्पण।

× देह अपावन अथिर घिनावन यामैं सार न कोई।
सागरके जलतैं शुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई॥ भूधरदास, पार्श्वपुराण

ऐसी धिठोंही पकरी है। जोरावरी ठीकरी कौ रुपयो चलावै सो न चालै। अपनी भूलि न तजै तौ अपनी हांसी खलक में (संसारमें) आप करावै। कै देखो अनन्त ज्ञानको धनी भूलि दुःख पावै है। हांसीके भये जन सरमिंदो होय। फेरि हांसी को काम न करै। याकी अनादिकी जगतमैं हांसी भई है। लाज न पकरै है। फेरि फेरि वाही झूंठी रीतिकौं पकरै है। जाको वात हू के किये अनुपम आनन्द होय, ऐसो अपनो पद है। ताकौं तौ न ग्रहै। पर वस्तुकी ओर देखत ही चौरासीको बन्दीखानो है, ताकौं वहोत रुचि सेती सेवै है। ऐसी हठ रीति विपरीति रूपकौ अनूप मानि मानि हर्ष धरै है। जैसैं सांप कौं हार जानि हाथ घालै तौ दुःख होय ही होय, तसैं रुचि सेती पर सेवनतैं संसार-दुःख होय ही होय॥

जैसैं एक दृष्टिवन्धवालौ नर एक नगरमैं एक राजाके समीप आय रह्यौ। केतेक दिन पीछैं राजा मूवौ। तव वा नरनैं राजा कौ मूवो न जनायौ। राजा कौ तो वहुत उंडो (ऊंडो-गहरो) गाड़ि माटी दे, ऊपरि वेमालूम जायगां करि दृष्टिवन्ध सौं काठकौ राजा दरवारमैं वैठायो। दृष्टिवन्ध सूं सवकौं सांचौ भासै। जव कोई राजाकौं वूझै, तव वो नर जुवाव दे, तव लोक जानै राजा वोलै है। ऐसो चरित्र दृष्टि वन्धसौं कियौ। तहां एक नर वनकी वूँटी सिर परि टांगि आयौ, उस वूँटीके वलतैं वाकी दृष्टि न वँधी। तव वह नर लोककौं कहनैं लागो, रे कुबुद्धि

जन हो! काठकौं (राजा) प्रत्यक्ष देखिये है। तुम याकौं सांचो राजा जानि सेवो हो, धिक्कार है तुम्हारी ऐसी समझिकौं। तैसैं ये संसारी सब इनकी दृष्टि मोह सौं बँधी, परको आपा मानि सेवैं हैं परमें चेतना का अंश हू नांही। ज्ञान जाकै भयो, सो ऐसैं जानै है, ये संसारी कुबुद्धि जड़में आपा करि मानै हैं। दुःख सहै हैं। धिक्कार इनकी समझि कौं! झूठे हठ दुःखदायककौं सुखदायक जानि सेवैं हैं।

जैसैं काहूको जन्म भयो, जन्मतैं ही आँखिपरि, चामड़ी की लपेटी चल्यो आयो, मांहि सूं (आभ्यन्तरमें) आँखिकौ प्रकाश ज्यौं कौ त्यौं है*। बाह्य चर्म आवरण सौं आपकौं शरीर आपकौं× न दरसे। जब कोऊ तबीब (नेत्रका वैद्य) मिल्यो, तानैं कही, याकै मांहि प्रकाश ज्योतिरूप आँख सारी है। वानैं जतन करि चर्मको लपेटो दूरि कियो, तब शरीर आपकौं आप ही देख्यौ, और भी दरसै लाग्यौ। या प्रकारि अनादि ज्ञान-दर्शन नैन मुद्रित भये, चले आये, आप स्वरूप न देख्यौ। तब श्रीगुरु तबीब (नेत्र वैद्य) मिले तब ज्ञानवरण दूरि करणको उपाय बतावत ही याकै श्रद्धान करि दूरि ही भयो। तब आपणौ अखण्ड ज्योतिःस्वरूप पद आप देख्यो, तब अनन्त सुखी भयो।

जेवरीमें सांप नहीं, सीपमें रूपो नहीं, माड़ली (मृग

---

* मु० "है" नहीं है।

× मु० प्रति में "शरीर, आपकौं" नहीं है।

तृष्णा) मैं जल नहीं, कांच मन्दिरमैं दूजो स्वान नहीं, मृग बारैं बास नहीं, नलनीकौ सूवो काहूनें पकरयो नहीं, बानराकी मूठी काहू पकरी नहीं, सिंह कुवामैं दूजो नहीं, ऐसैं कोऊ दूजो नहीं, आप ही की भूलि झूठी, तातैं आप दुःख पावै है। दूजो मानि मानि दुःख पावै है। सांच जानै सदा सुखी होइये ॥ यह आत्मा सुखके निमित्त अनेक उपाय करै है। देश देश फिरैं, लक्ष्मी कमाय सुख भोगवै। अथवा परीषह अनेक सहै, परलोक सुख निमित्त, सुख*का निधान निज स्वरूपकौ न जानै। जानै तौ तुरत सुखी होय ॥

जैसैं सब जनकी गांठड़ी मैं लाल÷(मणि) हैं, वै सब भ्रमसे भूलकर मसकती × होय रहे हैं। जो गठड़ी खोलि देखैं, तो सुखी होंय। अन्धछे तौ कूपमैं परै तो अचिरज नहीं। देखता परै तो अचिरज। तैसैं आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है, अरु संसार कूपमैं परै है, यह बड़ा अचिरज है। मोह ठगनैं ठगोरी इसके सिर डारी, तिम तैं पर घर ही कौं आपा मानि निजघर भूल्या है, ज्ञानमन्त्रतैं मोह ठगोरीनैं उतारै, तब निज घरकौं पावै। बार बार श्रीगुरु निज घर पायवेकौ उपाय दिखावैं हैं। अपने

---

* मु० प्रति में 'सुखका' शब्द नहीं है।

÷ लाल बँध्यो गठड़ी विषै, लाल विना दुःख पाय।
खोल गांठड़ी जो लखै, लाल तुरत मिल जाय ॥

× यह अरवी भाषाका शब्द 'मशक्कत' है, जिसका अर्थ श्रम, कष्ट अथवा तकलीफ होता है। देखो, हिन्दी उर्दू कोष।

अखंडित उपयोग निधानकौं ले अविनाशी राज्य करि। तेरी हरामजादगीतैं अपना राजपद भूलि कौड़ी कौड़ीकौं जाच (मांग) कंगाल भया है। तेरा निधान ढिग ही था, तैं न संभाल्या। तातैं दुःखी भया॥

जैसैं चांपा (नामका) ग्वाल धतूरैकौं पीय उन्मत्त भया, मैं चांपा नाहीं, चांपाके घर पीछैं ठाढ़ा (खड़ा) होय पुकारने लगा कि चांपा घरि है? तब उसकी नारीनैं कह्या, तूं कौन है? तब चेत भया मैं चांपा हौं। तैसैं श्रीगुरूने आपा बताया है। पावै ते सुखी होय। कहां लौ कहिये? यह महिमा निधान अमलान अनूपपद आप चण्या है, सहज सुख कन्द है, अलख अखंडित है, अमिततेजधारी है। दुःखद्वन्द्वमैं आपा मानि अति आनन्द मानि रह्या है अनादि ही का, सो यह दुःखकी मूल भूलि जब ही मिटैं, जब श्रीगुरु वचन सुधारस पीवैं। चेत होय परकी ओर अवलोकन मिटैं। स्वरूप स्वपद देखत ही तिहूंलोक नाथ अपना पद जानैं*। विख्यात वेद बतावैं हैं॥

---

* मेरो सरूप अनूप विराजत मोहि मैं और न भासत आना।
ज्ञान-कला निधि चेतन मूरति एक अखण्ड महा सुख थाना॥
पूरन आप प्रताप लियें जहां योग नहीं परके सब नाना।
आप लखैं अनुभाव भयो अति देव निरंजनको उर आना॥ ४३॥
—ज्ञानदर्पण

नटवा स्वांग धरै नांचै है। स्वांग न धरै तौ पर रूप नाचना मिटै। ममत्वतैं पर रूप होय होय चौरासीका स्वांग धरि नांचै है। ममत्व मेटि सहज पदकौं भेटि थिर रहै, तौ नांचना न होय। चंचलता मेटै चिदानन्द उधरै है, ज्ञानदृष्टि खुलै है। नैक स्वरूपमैं सुथिर भये गति भ्रमण मिटै है। तातैं जे स्वरूपमैं सदा स्थिर रहैं, ते धन्य हैं॥

अपनी अवलोकनिमैं अखण्ड रस धारा वर्षै है, ऐसा जानि, निज जानि, पर मानि कौं मेटि, यह मैं सुखनिधान ज्योतिःस्वरूप परम प्रकाशरूप अनूपपदरूप स्वरूप हौं। इस आकाशवत् अविकारपदमैं चिद्विकार भया, परसंयोगतैं। इहां तौ परके निवासका अवकाश न था। कैसैं अनादि ठहर्या? तहां कहिये है।

कनक खानमैं कनक चिर हि का गुप्त है। तैसैं आतमा कर्ममैं गुप्त अनादि ही का है। पर जोग अनादि तैं अशुद्ध उपयोग अशुद्धता लगी है, सो देखि। कैसैं लगी है, सो कहिये है॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय, मन, वचन, देह, गति, कर्म, नोकर्म, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अन्य जीव जितनेक पर वस्तु हैं। तितने आप करि जानिये है। सो मैं ही हौं, मैं इनका कर्त्ता हौं, ये मेरे काम हैं, 'मैं हौं सो ये हैं, ये हैं सो मैं हौं'' ऐसैं पर वस्तु कौं आपा जानै, आ कूं पर जानैं, तब लोकालोककी जाननेकी शक्ति सर्व अज्ञान भावकूं

परणई है। सोई जीवकौ ज्ञानगुण अज्ञानविकार भया। यौं ही जीवका दर्शनगुण था। जेते पर वस्तुके भेद हैं, तिनकौं आपकरि देखै है, ये मैं हौं, आपा पर-मैं देखै है, आपाकौं पर देखै हैं। लोकालोक देखनेकी जेती शक्ति थी, तेती सर्व शक्ति अदर्शनरूप भई। यौं करि जीवका दर्शनगुण विकाररूप परिणम्या।

जीवका सम्यक्त्वगुण था, सो जीवके भेदनकौं अजीव की ठीकता करै है। चेतनकौं, अचेतन, अचेतनकौं चेतन, विभावकौं स्वभाव, स्वभावकौं विभाव, द्रव्य अद्रव्य, गुण अगुण, ज्ञानकौं ज्ञेय, ज्ञेयकौं ज्ञान, आपकौं पर, परकौं आप, यौं ही करि और सर्व विपरीतकौं ठीकता आस्तिक्य भावकौं करै है। यौं जीवका सम्यक्त्वगुण मिथ्यारूप परिणम्या। और जीवका स्व-आचरणगुण था, जेती कछू पर वस्तु हैं तिसी पर कौं स्व-आचरण करि क्रिया करै, पर विषैं तिष्ठ्या करै, परहीकौं (राग भाव वश) ग्रह्या करै, अपने चारित्रगुणकी सर्व शक्ति पर विषैं लगि रही है, यौं जीवका स्वचारित्रगुण भी विकाररूप परिणमैं हैं।

अवर इस जीवका सर्व स्वरूप परिणमनेका बलरूप सर्व वीर्यगुण था, सो निर्बलरूप होय परिणम्या स्वरूप परिणमने का वल रहि गया निर्बल भया परिणम्या। यौं करि जीवका वीर्यगुण विकाररूप परिणम्या। अवर इस जीवका आत्म-

स्वरूप रस जो परमानन्द भोग गुण था, सो पर पुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता असाता पुण्य-पापरूप उदय पर-परिणामके बहु भांति विकार चिद्विकार परिणामहीका रस भोगव्या करै, रस लिया करै, तिस परमानन्द गुणकी सर्व शक्ति पर परिणामहीका स्वाद स्वादा करै। सो परस्वाद परम दुःखरूप। यौं करि जीवका परमानन्द गुण दुःख विकाररूप परिणम्या। यौं ही करि इस जीवके अवर गुण ज्यौं ज्यौं विकारी भये हैं, त्यौं त्यौं ग्रन्थान्तरतैं जानि लेने।

इस जीवके सर्व गुणहीके विकारका चिद्विकार नाम संक्षेप सूं कहना (कहा है) गुण-गुणकी अनन्ती शक्ति कही, सत्ताकी है (सो वह) शक्ति अनन्त गुणमैं विस्तरी। सब गुणकी आस्तिक्यता सत्तातैं भई। सत्तानैं सासता सबकौं राख्या। अनन्त चेतनाका स्वरूप असत्ता होता, तौ चिच्छक्तिरूप चेतना अविनाशी महिमा न रहतो। सत् चित आनन्द विना अफल भये किम कामके? तातैं सत् चित् आनन्दरूप करि आत्मा प्रधान है। अरूपी आत्मप्रदेशमैं सर्वदर्शनी सर्वज्ञत्व स्वच्छत्व आदि अनन्त शक्तिका प्रकाश है, ते उपयोगके धारी अविकारी कर्मत्वकरि आवरे, संकोच-विस्तार शरीरकार भये। आत्मा आकाशवत् कैसैं संकोच विस्तार धरै? पुद्गल संकुचै विस्तरै, तौ काष्ठ पाषाण घटते बढ़ते होय। सो चेतना विना न बढ़ै। चेतन ही बढ़ै, घटै, तौ सिद्धके प्रदेशका विस्तार होयकै घटि

जाय, सो भी नांहीं। जड़ चेतन दोन्यौं मिले संकोच विस्तार हो है। प्रदेशमें सब गुण कहे हैं। पर संसार अवस्थातें मोक्ष-मार्गकी चढ़ि न भई। तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र-मोक्षमार्ग *कया। इनकी जेती जेती विशुद्धि होत भई, ÷तेता तेता मोक्षमार्ग भया॥

निश्चय मोक्षमार्ग दोय प्रकार—सविकल्प, निर्विकल्प। +सविकल्प में "अहं ब्रह्म अस्मि" मैं ब्रह्म हूँ—ऐसा भाव आवै। निर्विकल्पमें वीतराग =स्वसंवेदन समाधि कहिये। लोकालोक जाननेकी शक्ति ज्ञानकी, स्वसंवेदन जेता भया, तामैं स्वज्ञान विशुद्धताके अंश होन भये। सो ज्ञान सर्वज्ञ शक्तिमें अनुभव किया। जेता ज्ञान भया शुद्ध, तेता अनुभवमें सर्वज्ञानकी प्रतीति भाव वेदना ऐसा भया। सर्वज्ञानका प्रतीति भावमें आनन्द बढ़या। ज्ञान विमल अधिक होन भया। ज्ञानकी विशुद्धताकौं ज्ञानके बलका प्रतीतिभाव कारण है। ज्ञान परोक्ष है। पर परिणतिके बल आवरणके होतैं भी उस स्वसंवेदनमें स्वजातीक सुख भया ज्ञान स्वरूपका भया। एक देश स्वसंवेदन सर्व स्वसंवेदनका अंग है ज्ञान वेदनामें वेद्या जाय है. साक्षात् मोक्ष-मार्ग है। यह स्वसंवेदन ज्ञान ही जानें। स्वरूपतें परिणाम थिर भया, सोही संसार स्वरूपाचरणरूप परिणाम सो ही साधक

* "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" तत्वार्थसूत्र १-१। ÷ ख 'तातैं'।
+ मु० प्रतिमें यह वाक्य नहीं है। =क प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

अवस्थामें मोक्षमार्ग, सिद्ध अवस्थामें मोक्षरूप है। जेता जेता अंश ज्ञानवस्तुतैं आवरणका अभाव भया, तेता तेता अंश मोक्ष नाम पाया। स्वरूपकी वार्ता प्रीति करि सुणै, तौ भावी मुक्ति *कही अनुपम सुख होय अनुभव करै. तिनकी महिमा कौन कहि सकै।

जेता स्वरूपका निश्चय ठीक भावै, तेता स्वसंवेदन अडिग रहै, तेता स्व-आचरण ÷ होय तेता ठीक स्वसंवेदन होय, एक भये, तीनोंकी सिद्धि है। गुप्त शुद्ध शक्ति सिद्धि समानमें परिणति प्रवेश करै। ज्यौं ज्यौं शुद्धताको प्रतीतिमें परिणति थिर होय, त्यौं त्यौं मोक्षमार्गकी शुद्धि होय। ज्यौं कोई अधिक कोस चालै तब नगर नजीक आवै। त्यौं शुद्ध स्वरूपकी प्रतीतिमें परिणति अवगाढ़ गाढ़ दृढ़ होय, मोक्षनगर नजीक आवै। अपनी परिणति खेल आप करि आप भव-सिन्धुतैं पार होय। आप विभावपरिणतितैं संसार विषम करि राख्या है। संसार-मोक्ष की करणहारी परिणति है, निज परिणति मोक्ष, पर परिणति संसार। सो यह सत्संगतैं अनुभवी जीवनिके निमित्ततैं निजपरिणति स्वरूपकी होय, विषम मोह मिटै परमानन्द भेंटै। स्वरूप पायवे-का राह संतोंनैं सोहिला (सरल) किया है॥

---

* 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन' येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो, भाविनिर्वाणभाजनं॥'—पद्मनन्दि पंच०।
अर्थात्—जिस जीवने प्रीतियुक्त प्रसन्न चित्तसे उस आत्म-तत्वकी वात भी सुनी, वह जीव विशेष कर भव्य है और अल्प समयमें निर्वाणका पात्र है।

÷ मु० प्रति में पंक्ति नहीं है।

चौरासी लाख योनि-सरायका *सदा फिरन हारा कबहूं कहूं थिररूप निवास न किया। जब तक परमज्योति अपनें शिवघरकौं न पहुंचे तब तक ×एक कार्य भी न सरै। कहा भयो जो जपी तपी ब्रह्मचारी यति आदि बहुत भेष धरै, तौ तातैं निज अमृतके पीवनेतैं अनादि भ्रम खेद मिटै। अजर अमर होय तत्त्व सुधा सेवनेका मार्ग कहा? सो कहिये हैः—

अपनें चिदानन्दस्वरूपकौं अवलोकि, अनुभव करि, सकल अविद्यातें मुक्त, तत्त्वका कौतूहली होय, निजानन्द केलि कला करि, स्वपदकौं देखि, अनातमका संग फिरि न रहै, अनादि मोहके वशतैं निज हित, अहितमें मानि रहा =है ता मोहकौं भेदज्ञानतैं +भानि, (विनष्ट कर) ज्ञान-चेतनाका अनुभव करि, अनादि अखण्डित ब्रह्मपदका विलास तेरै ज्ञान कटाक्षमें है।

अज्ञान-पटल जब मिटै, सद्गुरुवचन-अंजनतैं पटल दूर भये ज्ञान-नयन प्रकाशै, तब लोकालोक दरसै। ऐसा ज्ञान ताकी महिमा अपार, अनेक मुनि पार भये। ज्ञानमय मूरतिकी सुरतिका सेवन करि करि। अपने सहजका ख्याल है। पर परचेमें विषम है। सहजबोध कलाकरि सुगम, कष्ट क्लेशतैं दूर है। काहतैं? अफीम खाये विषकी लहरी तुरत चढ़ै। अमृत सेवनतैं तुरत तृप्ति

---

* मु० प्रतिमें नहीं है। × मु० प्रतिमें नहीं है।

= मु० प्रतिमें "अहित में मानि रहा है" नहीं है

+ मु० प्रतिमें 'भानि' नहीं है।

होय सुख पावै। तैसें कर्म संक्लेशमैं शान्तपद नहीं। अनन्त सुख निधान स्वरूप भावनाके करत ही अविनाशी रस होय ता रसकौं संत सेय आये। तूं ताकौं सेय, श्रेयपदरूप अनूप ज्योतिः स्वरूपपद अपना ही है। अपनैं परमेश्वर पदका दूरि अवलोकन मति करै। आपहीकौं प्रभु थाप्प (मान) जाकौं नेक यादि करि, ज्ञान-ज्योतिका उदय होय, मोह-अन्धकार विलय जाय, आनन्द सहित कृतकृत्यता चित्तमैं प्रगटै। ताकौं वेग (शीघ्र) अवलोकि, आन ध्यावन (परका ध्यान एवं चिंतन) निवारि, विचारिकैं संभारि, ब्रह्म विलास तेरा तोमैं है। यातैं कहा अधिक? जो याकौं छोड़ि तू परकौं ध्यावै च्यारि वेद भेद लहि, गहि स्वपद स्वरूप सुखरूप तेरी भावनामैं अविनाशी रस चोवा चूवै है। सो भावना करि भ्रम भाव मेंट, तेरी भावनानैं झूठे ही भव बनाया है। ऐसा बदफैल स्वभाव कल्लोलके प्रगट होतैं ही मिटै है।

देखि, तूं चेतन है। जड़ अजान है। तैं अजानमैं (अचेतनमें; आस्रवरूप अनात्मभावमें) आपा मान्या, अशुद्ध भया, तेरी लैर (पीछे) अजान न परै है। तू अपने पदतैं ईथैं को (इधरको) मति आवैं। तेरा जड़ कछु पल्ला न पकरै है। नाहक (व्यर्थ ही) विरानी (दूसरेकी) वस्तुकौं अपनी करि करि झूठी हौंस करै। यह हमैं भोगसें सुख भया, हम सुखी हैं, झूठी भरम-कल्पना मानि मोद करै है। कछू भी सावधानीका अंश

नाहीं, यह कोई अचिरज है, तिहूँ लोकका नाथ होय अपने पूज्य पदकौं भूलै। नीच पदमैं आपा मानि विकल होय व्याकुल रूप भया डोलै है।

जैसैं कोई एक इन्द्रजालका नगरमैं रहै, तहाँ इन्द्रजालीके वश हुआ इन्द्रजालके हाथी, घोरे, नर, सेवक, स्त्री सब, तिसमैं काहूकौं हुकम करै है। सेवक आय सलाम करैं, स्त्री नृत्य करै। हाथी चढ़ै। घोड़ा दौड़ावै। इन्द्रजालमैं यह *ख्याल (खेल तमाशा) सांचि जानै, विकलता धरि कबहूं काहूके वियोगतैं रोवै, दुःखी होय छाती कूटै। कबहूं काहूका लाभ मानि मोद करै कबहूं श्रृंगार बनावै, कबहूं फौज देखै, कबहूं मौज बकसै, ऐसैं झूठका ख्याल सांचि मानि रह्या है, संसारमैं ÷सब कहैं इन्द्रजाल झूंठा है, उनमैं रंचहु सांच नांहीं। ऐसैं देव, नर, नारक तिर्यंचके शरीर जड़ हैं। चेतनका अंश नांहीं, भ्रमतैं श्रृंगारै। खान-पान चोवा (अर्क चूआ) लगावनादि अनेक जतन करै। झूंठ ही में मोद मानि मानि हरखै, मूवै सौं जीवता सगाई करै! कार्य कैसैं सुधरै।

जैसैं श्वान हाड़को +चावै, अपने गाल, तालु मसूढ़ेका

---

* मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है। ÷ मु० प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

\+ जैसे कोऊ कूकर छुधित सूके हाड़ चावै, हाड़निकी कोर चहु ओर चुभै मुखमें। गाल तालु रसना मसूढ़निको माँस फाटै, चाटै निज रुधिर मगन स्वाद-सुखमें।। तैसै मूढ़ विषयी पुरुष रति-रीति ठानै, तामैं चित्त सानै हित मानें खेद दुखमें। देखै परतच्छ बल-हानि-मल-मूत-खानि गहै न गिलानि पगि रहै राग-रुखमें।। ३०।। नाटक समयसार, बंधद्वार।

रक्त उतरैं, ताकौं जानैं भला स्वाद है ! ऐसैं मूढ़ आप दुःखमैं सुख कल्पै है ! पर फंदमैं सुखकंद सुख मानै ! अग्निकी झाल शरीरमें लगै, तब कहै हमारै ज्योतिका प्रवेश होय है । जो कोई अग्नि झाल कूं बुझावै, तासौं लरै । ऐसैं परमैं दुःख संयोग, परका बुझावै तासों शत्रुकी सी दृष्टि देखै । कोप करै । इस पर-जोग मैं भोग मानि भूल्या, भावना स्वरसकी यादि न करै । चौरासीमैं पर वस्तुकौं आपा मानै तातैं चोर ही ÷चिर-कालका (चिरकालंक) भया । जन्मादि दुःख-दण्ड पाये तौहू चोरी पर वस्तुकी न छूटै है । देखो देखो ! भूलि तिहूं लोकका नाथ नीच-परकै आधीन भया । अपनी भूलितैं अपनी निधि न पिछानैं । भिखारी भया डोलै है । निधि चेतना है सो आप है । दूरि नांहीं देखना दुर्लभ है । देखैं सुलभ है ॥

किसीनैं पूछा, तूं कौन है ? वानैं कह्या, मैं मडा (मर्दा-मरा हुआ) हौं, तौ बोलता कौन ? कहै मैं जानता नांहीं । तो मैं मडा हौं ऐसा किसनैं जान्या ? तब संभारचा, मैं जीवता हौं । ऐसैं यह मानैं, मैं देह हौं तौ यह देहमैं जो मानना किया सो कौन है ? कहै, मैं न जानों ऐसा ल्यावना किसनैं किया ? यह आपाकौं खोजि देखने जानने परखनेमैं स्वरूप संभारै, तब सुखी होय है । जैसें कोई मदिरा पीय उन्मत्त पुरुपाकार पाषाण थंभकौं देखि सांचा जानि उससौं लरचा । वह

÷ मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है ।

ऊपरि आप नीचै आप ही भया। वाकौं कहै, मैं हार्यो। ऐसैं परकौं आपा मानि, *आप मानितैं दुःखी भया। कोई दूजा नाहीं दुःखदाता, तेरी भावनाने भव बनाया, ना पैद पैदा किया, अचेतनकौं चलाया, मूवैका जतन अनादिका करता है। आपसा तू करता है झूठी मानिमैं तेरा किया कछु जड़ चेतन न होय। तूं ही ऐसी झूठी कल्पनातैं दुःख पावता है। तेरा क्या फायदा है? तूं ही न विचारै है। मेरा फंदमैं पारत हौं। कछु सिद्धि नांहीं। विनु विचार तैं अपनी निधि भूल्या। अनन्त चतुष्टय अमृत मैला किया। चेतना मेरा पाड्या फंद ऐसा है। आकाश बांधा है, अचरज आवै है, परि जो केवल अविद्या ही होती तो तू न आवर्‍या जाता ॥

अविद्या जड़ छोटी शक्ति (से) तेरी मोटी शक्ति, न हती जाती। परि तेरी शुद्ध शक्ति भी बड़ी, तेरी अशुद्ध शक्ति भी बड़ी। तेरी चितवनी तेरे गरैं परी। परकौं देखि आपा भूल्या, अविद्या तेरी ही फैलाई है। तू अविद्यारूप कर्मन परि आपा न दै, तौ किछु जड़का जोर नाहीं। तातैं अपरम्पार शक्ति तेरी है। भावना परकी करि भव करता भया, संसार वढ़ाया। निज भावनातैं अविनाशी अनुपम अमल अचल परमपदरूप आनन्दघन अविकारी सार सत् चिन्मय चेतन अरूपी अजरामर परमात्माकौं पावै है। तौ ऐसी भावना क्यौं न करिये? इस अपने स्वरूप ही

* यह शब्द मु० प्रतिमें नहीं है। × गरैं = गलेमें

में सर्व उच्चत्व, सकल पूज्य पद, परमधाम, अभिराम, आनन्द अनन्तगुण स्वसंवेदरस स्वानुभाव परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप अनूप-देवाधिदेवपणौ इत्यादि सब पाइयै; तातैं अपणौ पद उपादेय *है। अर अवर पर पद हेय है। एकदेश मात्र निजावलोकन ऐसा है। इन्द्रादि सम्पदा विकाररूप भासै है। जिसके भयेतैं अनन्त सन्त सेवन करि अपने स्वरूपका अनुभव करि भवपार भये तातैं अपने स्वरूपकौं सेवौ॥

सर्वज्ञ देवनैं सब उपदेशका मूल यहा बताया है, एक वेर स्वसंवेदरसका स्वादी होय तौ ऐसा आनन्दमें मग्न होय, परकी ओर फिरि कबहूं दृष्टि न दे। स्वरूप समाधि संतनका चिह्न है तिसके भये रागादि विकार न पाईये, जैसैं आकाशमें फूल न पाईये। देह अभ्यासका नाश अनुभवप्रकाश चैतन्यविलास भावका लखाव लखि लक्ष्य लक्षण लिखनेमें न आवै। लखैं सुख होय। स्वाद रूप लिखैं न होय। आत्म सहित विश्व व्याख्येय, व्याख्या वाणीकी रचना, व्याख्याता व्याख्यान करणहार ये सब बातें कछु हैं, सो मोहके विकारतैं मानिये हैं। अनादि आत्माकी आकुलता एक विशुद्ध बोध कलाकरि मिटै है। तातैं

---

* एकमेव हि तत्स्वाद्य, विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते, पदान्यन्यानि यत्पुरः॥ आचार्य अमृतचन्द्र।
जो पद भौ पद भय हरै, सो पद सेऊ अनूप।
जिहि पद परसत और पद, लगैं आपदा रूप॥ १७॥ बनारसीदास।

सहज बोधकलाका निरन्तर अभ्यास करो। स्वरूप आनन्दी होय भवोदधिकौं तिरो॥

नरभव कछु सदा तौ रहै नाहीं, साक्षात् मोक्ष साधन ज्ञानकला इस भव विना और जायगा न उपजै। तातैं वार वार कहिये है, निज बोधकलाके बल करि निज स्वरूपमैं रहो। निरन्तर यह यत्न करो। ऐसा कहाव तौ वारवार बालक हू न करावै। तुम अनन्तज्ञानके धनी होय करि ऐसी भूलि धरौ, सौ बड़ा अचिरज आवै है। सो अचिरजकी बात न करिये। चाम हाड़ मय जड़ शरीरमैं आपा मानै मोटी हानि है। आपकी जानिमैं सुख समुद्र कूं पाय अविनाशी पुरीका राजा होय, अनन्त चैतन्यशक्ति राजधानीका विलासी होय है। परमैं आपा मानि तूं ऐसैं दुःख पावै, जैसैं कोई मडेकौ वस्त्र-आभूषणादि करै, मानैमैं पहरै है? तौ जीवता झूठ ही आपकौं मानै है। ऐसैं देह जड़ है। याके भोग तूं आप मानि झूठ ही काहेकौ जड़की क्रिया आपकी मानै? जैसैं सांप काहूकौं काटै, काहूकौं विष चढ़ै, तौ अचिरज मानियै। जड़ खाय पहिरै, स्नान चोवादि (तेल मदन) क्रिया करै, तुम कहौ हम खाया, हम भोग कीया, परके स्वामी भये। सो पर स्वामी भी यौं न मानै। जैसैं राजा किंकरनका स्वामी है। किंकर भोजनसे तृप्त हुये यौं न कहै मैं तृप्त हौं। अर तुम देखो, तुमारी ऐसी चाल तुम हीकौं दुःखदायी है।

जो सुन्दर वस्तु होय तौ ऊपरिकी अंगीकार न कीजै।

देह अशुचि नवद्वार *स्रवै, दीखत ही की ग्लानिरूप, मांहि सुन्दर होय, तौ बाहिरमैं बुरी परी है। सो मांहि विष्ठा मूत्रकी खानि न विनसै, तौ ऐसी हूं लीजै। विनसौ हू जो आपकौं दुःख दायी न होय, तातैं ऐसैको स्नेह तुम ही करौ जन्मादि दुःख भरी। तुमारी लार जन्मादि अनादिके लगे आये हैं। तुम्हीनैं महान पुरुषोंकी सी रीतिका भाव किया है, जो हम सौं लगै, तिनकौं न छोड़ैं। यौं तौ महन्त न कहावोगे। महन्त तौ पापकौं मेटै होय। ये तो पापका रूप है। तातैं तुम समझो। अपने धनको अंगीकार करो विराना× धन जाता रहै फेरी तुम ग्रहौ, ताके दण्ड भव दुःख सहौ हो तोऊ परकों लेते लेते थके नाहीं। बहुत दुःखी भये परि (परन्तु) पर ग्रहणकी वाण (लालसा) न छोड़ौ हौ। साहपद तौ अपने धन तैं पावोगे। यातैं स्व-पर विवेकी होय आत्मधन ग्रहौ। परका ममत्वकौं स्वप्नान्तरमैं मति करौ। तुमारै अखण्ड रत्नत्रयादि अनन्त गुण निधान है दरिद्री नाहीं। जो दरिद्री होय सो ऐसैं काम करै ॥

तुम्हारा निधान श्रीगुरुनैं तुमकौं दिखाया है, अब संभारि सुखी होहु। जैसैं काहू नारीनैं अपनी सेज परि काठकी पूतरी कौं सिंगार सुवाणी, पति आया तब यौं जान, मेरी नारी शयन करै है। हेला दे, वा न बोलै, तब पवनादि खिदमत

---

* पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥ पं० दौलतराम।

× दूसरेका

(सेवा-टहल) सारी रात्रि विषै करी। प्रभात भया, तब जानीमैं झूठ ही सेवा करी। ऐसैं देहकौ सांचा आपा मानि सेवै हैं। ज्ञान भये जानै, यह झूठ अनादि देहमैं आपा मान्या। हे चिदानन्द तुम पंच इन्द्रिय रूपी चोर पोषौ हौ, जानौ हौ, यह हमकौं सुख दे हैं। सो अन्तरके गुण रत्न ये चोर छे हैं, तुमकौं खबर नाहीं। अब तुम ज्ञान खड्ग संभालौं। चौरनकौ ऐसैं रोकौ फेरि बल न पकरै। विषय-कषाय जीति निजरीतिकी राहमैं आवौ। अर तुम शिवपुरकौं पहुँचि राज करौं तुम राजा, दर्शन ज्ञान वजीर राजके थम्भ, गुण वसति, अनन्त शक्ति राजधानीका विलास करौ। अभेद राज राजत तुम्हारा पद है। अचेतन अपावन अथिरसौं कहा स्नेह करौ ?॥

नीकैं निहारौ। इस शरीर मन्दिरमैं यह चेतन दीपक सासता है। मन्दिर तौ छूटै, परि सासता रतनदीप ज्यौंका त्यौं रहै। व्यवहारमें तुम अनेक स्वांग नटकी ज्यौं धरै। नट ज्यौं-का त्यौं रहै। त्यौं *बद्ध वा स्पष्ट भाव कर्मको है। तौऊ कमलिनी पत्रकी नांई कर्म सौं न बंधै, न स्पर्शै। अन्य अन्य भाव मांटी धरै हू एक हैं। तैसैं तैसैं अन्य पर्याय धरैं हू एक है। समुद्र तरंग करि वृद्धि-हानि करै, तौऊ समुद्रत्व करि निश्चल +है, विभाव करि वृद्धि हानि करै। वस्तु निज अचल

---

* यह शब्द मु० प्रतिमें नहीं है।

+ सिंधुमें तरग जैसैं उपजै विलाय जाय नानावन वृद्धि-हानि जामैं यह

है। सोनौं वान भेद परि अभेद, यो नाना भेद कर्मतैं परि वस्तु अभेद। फटिक मणि हरी लाल पुड़ी तैं भासै, स्वभाव तो श्वेत है। पर, सौं पर, निज चेतनामैं पर नहीं। पड़्भाव ऊपरि ऊपरि रहैं। जलपरि सिवालकी नांई गुप्त शुद्ध शक्ति तेरी चिदानन्द व्यक्त करि भाय ज्यौं व्यक्त व्है। तूं अविनाशीरसका सागर। पर रस कहा मीठा देख्या? जाके निमित्त तैं संसारकी घुमेरी भई, ताहीकौं भला जानि सेवै है। जैसैं मद पीवनहारा मद पीवता जाय, दुःख पावता जाय, अधिक घुमेरीमैं भला जानि जानि सेवै; तैसैं भूला है॥

जैसैं एक नगरमैं एक नर रहै। नगर सूना, तहां दूजा और नाहीं, सो वो नर उस नगरमैं चौरासी लाख घरि, तिन घरनकौं सदा संवार्‍या ही करै, फिरि दूजे दिन औरमैं रहै, तब वाकौं संवारै। इस भांति उन भींतिड़ेकौ संवारतैं संवारतैं सारा जन्म बीता। उनके संवारनेतैं रोग भया, जबका संवारै था, तबहीका रोग लग्या। आपकी परम चातुरीकौं भूल्या। वा नरकौं बड़ी विपत्ति, विना प्रयोजन एकला सूने घरनमैं उनकी मशक्कत सहै, टहल करै। आप अनन्त बलवान् वृथा भूलि दुःख पावै है। इस नरका शहर एक परमवसतिका, वहांका यह

पाइये अपने स्वभाव सदा सागर सुथिर रहै ताको व्यय-उत्पाद कैसैं ठहराइये। तैसैं परजाय मांहि होय उत्पाद-व्यय चिदानन्द अचल अखण्ड सुधा पाइये। परम पदारथमैं स्वारथ स्वरूपहीको अविनाशी देव आप ज्ञान-ज्योति ध्याइये। (ज्ञानदर्पण १८८)

राजा है। वहांकों संभालै तौ छूने घरनकी सेवा तजै, वहांका राज्य करै। तैसैं यह चिदानन्द चौरासी लाख योनिके शरीरनकी संवारना करै। जिस घरमैं रहै, वसै संवारै, फिरि दूजी शरीर झौंपड़ीकौं संवारै फिरि और पावै, उसको संवारता फिरै। सब देह जड़, तिन जड़नकी सेवा करते-करते अनादि बीता। इस शरीर सेवामें कर्म रोग अनादिका लग्या आया। तिसतैं इस रोग करि अपना अनन्त बल छीन पड़्या, बड़ी विपत्ति जन्मादि भोगवै है। जड़नकौं ऐसा मानै है, मैं ही हौं।

जैसे वृक्ष पर बैठा एक वानर वृक्षका एक पता खिरे रोवै, तैसैं याके देहका एक अंग भी छीजै, तौ बहुतेरा रोवै। ये मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसैं जड़नके सेवनतैं सुख मानै। अपनी शिवनगरीका राज्य भूल्या, जो श्रीगुरुके कहे शिवपुरीकौं संभालै, तौ वहांका आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै। "तहाँ चेतना वसती है। तिहुं लोकमैं आन फिरै और भवका भ्रमण मेटि फेरि जड़मैं न *आवै"। आनन्द घनकौं पाय सदा सासता सुखका भोक्ता होय सो कहिये है॥

यह परमातम पुरुष तिसकी निजपरिणति अनन्त महिमा रूप परमेश्वर पदकी रमणहारी, सो ही मूल प्रकृति पुरुष प्रकृतिका विवेक रूप तरु, तिसके निजानन्द फल तिसकौं तूं रसास्वाद ले करि सुखी होहु। जैसे कोई राजाकौ विराना गढ़ (दूसरे का-

---

* यह पंक्ति क. ख. प्रतियोंमें नहीं है।

किला) लेना मुश्किल तैसैं इस आतमा कौं पर पद लेना मुश्किल है। काहै तैं अनादि कालसे पर पद लेता फिरै है। परि पर रूप न भया, चेतन ही रह्या। अरु चेतनापद आतमाका है, इसकौं न भी जानै है, भूल्या फिरै है, तौ भी वाकी रहणी निश्चय करि याहीमैं है, यातैं मुश्किल नांहीं, अपना स्वरूप ही है। भ्रमका पड़दा आपहीनैं अनादिका किया है। तातैं आप आपकौं न भासै है, परि (परन्तु) आप आपकौं तजि बाहरि न गया ॥

जैसैं नटवेनैं पशुका वेष धरया, तौ वह नर नरपणा कौं तजि बारैं न गया। पशु वेश न धरै तौ नर ही है। भ्रमतैं पर-का ममत्व न करै, तौ देहका स्वांग न धरै, तौ चिदानन्द जैसेका तैसा रहै। जैसैं एक डावीमैं रतन रक्खा, वाका कछु विगरया नाहीं, गुपत पुड़त दूरि करि, काढ़ै तौ व्यक्त है। तैसैं शरीरमैं छिप्या आतमा है, याका कछु न विगरया गुप्त है, कर्म रहित भये प्रगट हो है। गुप्त और प्रगट ये अवस्था भेद हैं। "दोन्यौं अवस्थामैं स्वरूप जैसैका तैसा है, ऐसा श्रद्धाभाव सुखका मूल है। जाकी दृष्टि पदार्थ शुद्धि परि नाहीं, कर्मदृष्टि त अशुद्ध अवलोकै, शुद्धकौं न पावै? जैसी दृष्टि देखै, तैसौ फल होय। मयूरमुकरन्द पाषाण है तामैं सब मोर भासै, पाषाण ओर देखै मोर भासै, पदार्थ ओर देखैं पदार्थ ही है, मोर नांहीं। तैसैं

परमैं पर भास, निज ओर देखैं पर न भासै, निज ही है। सुख कारी निजदृष्टि तजि, दुःखरूप परमैं दृष्टि न दीजै ॥

हे चिदानन्दराम! आपकौं अमर करिकैं अवलोकौ। मरण तुममैं नहीं। जैसैं कोई चक्ररत्न जिसकै घरमैं चौदा रत्न नव निधि अर वह दरिद्री भया फिरै, ताकौ अपने चक्रवर्ति पद अवलोकन मात्र तैं चक्रवर्ती आप होय, ऐसैं स्वपदकौं परमेश्वर अवलोकै तौ, तब परमेश्वर है। देखौ देखौ भूल। अवलोकन मात्र तैं परमेश्वर होय। ऐसी अवलोकना न करैं, इन्द्रिय चोरन-के वश भया अपने निधान मुसाय (लुटवाय) दरिद्री भया, भव विपत्तिकौं भरै है, भूलि न मेटै है। सो चित्तविकाररूप जीव होय, तब परकौं आपा मानै। ए भाव जीवका निज जाति स्वभाव नाहीं है। इन भावनमैं जो व्यापि रही चेतना सो ही चेतना एक तूं जीव निज जाति स्वभाव जानि। यह चेतना है सो केवल जीव है, सो अनादि अनन्त एक रस है, तिसतैं यह चेतना साक्षात् आप जीव जानना, तिसतैं शुद्ध चेतनारूप जीव भये। इन रागादि भावन विषैं आप ही रत *हुआ जीवकर्मचेतनारूप होय प्रवर्तै है। चेतना, जीव चेतना, चेतना रूप आप तिष्ठै है। कर्म चेतना कर्मफल चेतना, विकार जीव चेतनाका है। परि-व्यापक चेतना है। चेतना जीव विना नांहीं है। चेतना शुद्ध

---

* मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है।

जीवका स्वरूप है। ताके जाने ज्ञाता जीवकै ऐसा भाव होय है॥

अब हम शुद्ध चेतनारूप स्वरूप जान्या। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप हम हैं, विकाररूप हम नहीं, सिद्ध समान हैं बन्ध, मुक्ति, आस्रव, संवररूप हम नाहीं, हम अब जागे, हमारी नींद गई, हम अपनैं स्वरूपकौं एक अनुभवै हैं, अब हम संसारतैं जुदे भये, हम स्वरूप गज परि आरूढ़ भये, स्वरूपगृह विषैं प्रवेश किया, हम तमासगीर इस संसार परिणमनके भये। हम अब आप अपने स्वरूपकौं देखैं जानैं हैं। इतना विचार तौ विकल्प है। ज्ञानका प्रत्यक्षरस वेदना भावनमें सो अनुभव है। विचार प्रतीतिरूप साधक है, अनुभव भावसाध्य है। साधक-साध्य भेद जानैं तौ वस्तुकी सिद्धि होय। सो कहिये है॥

साध्य-साधक उदाहरण कहिये है। एक क्षेत्रावगाही पुद्गल कर्महीका सहज ही उदय स्थितिकौं होय है, सो साधक अवस्था जाननी। तहां तब लग तिस हवनेकी (होने की) स्थितिस्यौं चित्त विकार हवनेकी (होनेकी) प्रवर्तना पाईये है; सो साध्य भेद जांनना। मिथ्यात्व साधक, बहिरात्मा साध्य है। सम्यग्भाव साधक है, तहां वस्तुस्वभाव जा'त सिद्ध होना साध्य है। जहां शुद्धोपयोग परिणति होना साधक है, तहां परमात्मा साध्य है। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, तहां निश्चयरत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिकौं जहां विरति व्यवहार परिणति हवना (होना) साधक है, तहां चारित्र शक्ति मुख्य हवना (होना) साध्य है।

देव-शास्त्र-गुरु भक्ति विनय नमस्कारादि भाव जहां साधक है, तहां विषय-कषायादि भावनसौं उदासीनता मन-परिणतिकी थिरता (स्थिरता) साध्य है। जहां एक शुभोपयोग व्यवहार परिणति हवना (होना) साधक है, तहां परम्परा मोक्ष साध्य है।

जहां अन्तरात्मारूप जीवद्रव्य साधक है, तहां अभेद आप ही जीवद्रव्य परमात्मारूप साध्य है। जहां ज्ञानादिगुण मोक्षमार्गरूप करि साधक है, तहां अभेद आपही ज्ञानादिगुणका मोक्ष रूप साध्य है। जहां जघन्य ज्ञानादिभाव साधक है, तहां अभेद आपही वे ही (उन्हीं) ज्ञानादिगुणका उत्कृष्ट भाव साध्य है। जहां ज्ञानादि स्तोक निश्चय परिणति करि साधक है, तहां अभेद आपही बहुत निश्चय परिणति रूप ज्ञानादि गुण साध्य है जहां सम्यक्त्वी जीव साधक है, तहां तिस जीवके सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र साध्य हैं। जहां गुण मोक्ष साधक है, तहाँ द्रव्य मोक्ष साध्य है। जहां क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तहां तद्भव साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहां "जहां दरवित भावित *यति" व्यवहार साधक है, तहां साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहां भावित मनादि रीति विलय (?) साधक है, तहां साक्षात्परमात्मरूप केवल हवना (होना) साध्य है। जहां पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, तहां चिद्विकार विलय हवना (होना) साध्य है॥

---

* मु० प्रतिमें इस पंक्तिकी जगह "द्रव्य तैं भाव तैं साक्षात् द्वैत" पाठ पाया जाता है।

जहां परमाणु मात्र परिग्रह प्रपंच साधक है, तहां ममता भाव साध्य है। जहां मिथ्यादृष्टि हवना (होना) साधक है, तहां संसार-भ्रमण साध्य है। जहां सम्यग्दृष्टि हवना (होना) साधक है, तहां मोक्षपद होना साध्य है। जहां काललब्धि साधक है, तहां द्रव्यकौं तैसा ही भाव हवना (होना) साध्य है। हम स्वभाव साधन करि अपने स्वरूपकौं साध्य किया है। यह साध्य साधक भाव जानि सहज ही साध्य सध है। विशेष इनका कीजिये है। अहं नरः। अहं देवः। अहं नारकः। अहं तिर्यक्। ये शरीर मेरे; परमैं निजभाव, परकौं आपा मानना, स्वरूपतैं वाहरि पर पदार्थमें परिणाम तन्मय करना, राग भावतैं रंजकता करि परके स्वरूपकौं आप प्रतीति करि जानियै। ऐसा मिथ्यात्व, दूजा भेद मिथ्यात्वका। ऐसैं मिथ्यात्वकौं साधै है। सो कहिये है।

अतत्त्व श्रद्धान-मिथ्यादर्शन, अयथार्थ ज्ञान—मिथ्या-ज्ञान, अयथार्थ आचरण-मिथ्या आचरण। क्षुधादि अठारा *दोष संयुक्त देवकी भक्ति तारणबुद्धितैं मिथ्यात्व होय। कोहतैं? परानुभवी है, मिथ्या लीन है, तिनके सेयें मिथ्यात्व होय। ऐसैं दोष सहित जो गुरु ×ग्रंथलीन, विषयारूढ़ पर बुद्धि धारककौं मानैं मिथ्यात्व, मिथ्याशास्त्र मिथ्यामत मिथ्याधर्म

---

* जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद। रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद।। राग-द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष। नांहि होत अरहन्तके, सो छवि लायक मोख।

× ग्रन्थ = परिग्रह

इनकौं मानैं मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्व बहिरात्माका साधक है। अनादिका बहिरात्मा इस मिथ्या सेवनतैं भया है। तातैं बहिरात्मा साध्य है। दूजा सम्यग्भाव साधक है। सो वस्तुका जो स्वभाव अनन्त गुण ताकी सिद्धि करे है काहेतैं? सब गुण यथाविधि स्वरूप सम्यक् अपने स्वरूपकौं जब धरैं, तब सम्यग्भावकौं लिये होय, ज्ञानका निर्विकल्प जानपणा सब आवरण रहित केवलज्ञान रूप सम्यग्अवस्था रूप, सो सम्यग्ज्ञान कहिये। यौं ही आवरण सहित शुद्ध सम्यक्रूप यथावत् निश्चयभाव रूप निर्विकल्प सब गुण सम्यक् कहिये॥

द्रव्य अपने द्रव्यत्व जैसा शुद्ध स्वरूप है, तैसेकौं लिये, पर्याय जैसा कछु परिणमन रूप स्वभाव है, तैसेकौं लिये, ऐसैं द्रव्य–गुण–पर्यायका स्वभाव जाति सब सिद्ध हवना (होना) सम्यग्भावतैं है। तातैं सम्यग्भाव साधक है। वस्तुस्वभाव जाति सिद्ध हवना (होना) साध्य है, शुद्धोपयोग परिणति साधक है। परमात्मा साध्य है, सो कहूंतैं शुद्धोपयोग स्वभावसंगतैं होय है। ज्ञान–दर्शन तो साधक। तातैं सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग, सो ज्ञान–दर्शन तो साधक, तातैं सब शुद्ध नाहीं। केतेक शक्ति करि शुद्ध हैं। चारित्रगुण बारहमैं गुणस्थानके ठिकाने सब शुद्ध हैं। परि (परन्तु) परम यथाख्यात (चारित्र) तेरमैं-चौदमैं (गुणस्थानों) मैं नाम पावै है। तातैं केतेक ज्ञानशक्ति शुद्ध भई। ता ज्ञानशक्ति करि केवलज्ञानरूप गुप्त निजरूप

ताकौं प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनैं केवलज्ञानकूं प्रतीति रुचि श्रद्धाभाव करि निश्चय किया। गुप्तका व्यक्त श्रद्धानतैं व्यक्त होय जाय है॥

एक देश स्वरूपमैं शुद्धत्व सर्व देशकौं साधै है। शुद्धनिश्चय करि शुद्ध स्वरूप जान्या परिणतिमैं शुद्ध निश्चय भया। तब वैसा ही वेद्या (अनुभव किया)। शुद्धका निश्चय शुद्ध परमात्माकौं कारण है। तातैं शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है। ("सम्यग्भेद सहित व्यवहार तत्त्वमें मिला हुआ हेय–उपादेयका विचार साधक *है,") निश्चय साध्य है सो कैसैं? तत्त्वश्रद्धानमैं हेयका हेय श्रद्धान और निज तत्त्वका उपादेय श्रद्धान, तत्त्व ज्ञानमें पर-तत्त्वका रूप हेय जान्या, निज-तत्त्वकौं उपादेय जान्या; भव-भोगादि विरति कार्यकारी जानी। सम्यक्त्व आचरण रीति उपादेय जानी। ऐसा व्यवहार तत्त्वसौं मिला हुआ हेय–उपादेयका विचार सम्यग्भेदकौं लिये हो है। इस व्यवहारकै होतैं निज सम्यक्स्वरूपकौं मन-इन्द्रिय उपयोग निरोधि शुद्ध अनुभवै। निज श्रद्धान सिद्ध समान स्वरूपका करै। तत्त्व सातका भेल नहीं। निज शुद्धतत्त्व अनुभव गोचर करै। निश्चय करि श्रद्धानमैं आपकौं परमात्मा शुद्ध है। निश्चय करि ज्ञान परमात्मा-का जानपणा केवलज्ञान जातितैं जानैं। स्तोक सम्यग्ज्ञानतैं सब सम्यग्ज्ञानकौं प्रतीतिमैं जानै। स्वसंवेदमें जातिरूप करि अपना स्वरूप केवलज्ञानमैं ठीक जान्या। थोरे ज्ञानमैं बहुत ज्ञानकी

---

* मु० प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

प्रतीति आई। निश्चय करि स्वरूप जान्या सो निश्चयज्ञानपरिणति करि स्वरूपमें आचरना स्वरूपाचरण है। परमात्माका श्रद्धान ज्ञान निश्चय करि केतेक ज्ञानादि शुद्धशक्ति करि भया। तैसैं ही आचरण भया ॥

निश्चयनय परमात्मा है। परिणति वैसी ही निश्चयरूप परिणई है। ये निश्चय रत्नत्रय प्रथम व्यवहार रत्नत्रय भये होय हैं। तातैं व्यवहार रत्नत्रय साधक, निश्चय रत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टि कै विरति व्यवहार परिणति साधक है, तहां चारित्र-शक्ति मुख्य साध्य है। सो कहिये है। विरति परिणति कहिये रति नाहीं। ताके भेद विषयनमैं रति नाहीं, कषायनमैं रति नाहीं, अशुभाचरणका त्याग, शुभाचरणमैं हू रति नाहीं, कर्म करतूति-में रति नाहीं। ज्यौं-ज्यौं पर-रति-भाव तजै, त्यौं त्यौं स्वरूप विषैं थिरता विश्राम और आचरण होय, तहां चारित्र कहिये। परिणति शुद्धता प्रगटै चारित्रशक्ति मुख्य साध्य है।

देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति विनय नमस्कारादि भाव साधक हैं, तहां विषयादि उदासीनतामैं परिणति स्थिरता साध्य है, देव भक्ति, परमात्मा व्यक्त शुद्ध चेतना प्रगट अनन्त गुण प्रगट तिनकी पूजा, सेवा, मनसौं परिपूर्ण प्रीति, बाह्य प्रभावना, अंतरंग ध्यान, गुण वर्णन, अवज्ञा अभाव, परम उत्साह मन वचन काय धन सर्व भक्ति निमित्त लगावै, और अपने प्राण हूं तैं वल्लभ जाने प्राण दुःख मूल जानै, उनकौं अनन्तसुखका कारण जानै, शुद्ध स्वरूप

जानि भक्ति करै, शुद्ध स्वरूपका अभिलाषी आप, यातैं उनकी भक्ति रुचि श्रद्धा प्रतीतितैं करै, शास्त्रकी भक्ति करै, काहेतैं? अपनौ स्वरूप शास्त्रतैं पावै है। संसार-दुःखकी हानि स्वरूप भावनातैं होय, सो पावै। स्व-पर विवेक ग्रन्थतैं प्रगटै। मोक्षमार्ग *अथवा मोक्षस्वरूप वाणीतैं लहै। तातैं शास्त्रभक्ति कही। गुरु मोक्षमार्ग उपदेशै, शान्त मुद्राधारी गुरु, मुद्रा विना वचन बोल्या ही मोक्षमार्ग दिखावैं, ऐसै श्रीगुरु सर्व दोष रहित तिनकी भक्ति कही। इनकी भक्ति मुक्तिका यह कारण जानि करै। तब भव भोगसौं उदास होय मन स्वरूप ही की स्थिरता चाहै, +क्रिया साधै। तातैं उनकी भक्ति साधक है, मनकी स्थिरता साध्य है॥

शुभोपयोगके तीन भेद हैं। क्रियारूप, भक्तिरूप, गुण-गुणि भेद विचार रूप। सो सातिशयकौं लिये निरतिशयकौं लिये षट्भेद भये, जो सम्यक्त्व सहित सो सातिशय, सम्यक्त्व विना तीनौं निरतिशय। सम्यक्त्व सहितमैं तो नियम है, परम्परा मोक्ष करै ही करै। विना सम्यक्त्व शुभोपयोग संसार सुख दे है, देव पद दे, तहां राजपद दे। तहां देव–शास्त्र–गुरुकौ निमित्त होय याकै लाभ होनो होय तौ होय, नहीं तौ न होय।

* मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है।

+ मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है।

कारजको कारण विना नियम है (अर्थात् विना कारण के कार्य नहीं होता) ऐसी रीति जानियों। या प्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा मोक्ष साध्य है॥

अन्तरात्मा भेदज्ञान करि परसौं भिन्न निज रूप जानै, सिद्ध समान प्रतीति ज्ञान गोचर करै, तब साधक है आप ही आप, निश्चयनय अभेद परमात्मा साध्य है। जहां ज्ञानादि मोक्षमार्ग कहिये एक देश स्वसंवेदन शुद्धोपयोगरूप, तहां अभेद ज्ञानमूर्ति आत्मा मोक्ष स्वरूपकौं साधै, तातैं अभेद ज्ञान मोक्ष रूप साध्य है। जघन्य ज्ञान तैं उत्कृष्ट ज्ञान पाईये, तातैं जघन्य ज्ञान साधक उत्कृष्ट ज्ञान साध्य है। जहां ज्ञानादि स्तोक करि निश्चय करै, तहां वह निश्चय वढ़ै। जैसैं स्तोक अमलतैं वाह्य लीन अमल वहुत वढ़ै, वहुत निश्चय परिणतिरूप ज्ञानादि गुण वढ़ै; सो साध्य हैं। सम्यक्त्वी जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्रकौं साधै, तातैं सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-चारित्र साध्य हैं। सम्यक्त्वी साधक है। सम्यक्त्व ज्ञानादि भाव शुद्ध होंय, जब द्रव्यकर्म मिटैं, तव द्रव्यमोक्ष होय, तातैं गुणमोक्ष साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। क्षपक श्रेणी चढ़ै जब तद्भव मोक्ष होय, तातैं क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तद्भव मोक्ष साध्य है। दरवित लिंग होय, भावित स्वरूपभाव भाव होय, तव साक्षात् मोक्ष सधै तातैं, दरवितभावित यति व्यवहार साधक है, तहां साक्षान्मोक्ष साध्य है। भावित मनके विकार विलय भये साक्षान्मोक्ष होय, तातैं

भावित मनादिरीति विलय साधक है, साक्षान्मोक्षरूप साध्य है ॥

जहां पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, काहेतैं ? पुद्गलकर्म विपाक आये मनो-विकार उपज है, तातैं पुद्गल ही खिरि जाय, तब मनोविकार कहां तैं रहै ? तातैं मनोविकार विलय हवना (होना) साध्य है, कर्म खिरणा साधक है। जो परमाणु मात्र भी परिग्रह होय तौ ममताभाव होय ही होय, तातैं परमाणुमात्र परिग्रह साधक है, ममताभाव साध्य है। सो मिथ्यात्वतैं संसार भ्रमै तातैं मिथ्यात्व साधक, संसार-भ्रमण साध्य है। सम्यक्त्व भये मोक्ष होय, तातैं सम्यक्त्व साधक है, मोक्ष होना साध्य है। जैसी काललब्धि आवै, तैसी ही स्वभाव सिद्ध होय, तातैं काललब्धि साधक है, तैसा ही स्वभाव हवना (होन) साध्य है। साधक-साध्य भेद अनेक हैं, सो जाननै ॥

शब्द साधक है, अर्थ साध्य है। अर्थ साधक है, ज्ञान-रस साध्य है। स्थिरता साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, कर्म क्षरणा साध्य है। कर्म क्षरणा साधक है, द्रव्य मोक्ष साध्य है। राग-द्वेष-मोह अभाव साधक है, संसाराभाव साध्य है। धर्म साधक है, परमपद साध्य है। स्व-विचार प्रतीतिरूप साधक है, अनाकुलभाव साध्य है। समाधि साधक है, निजशुद्ध स्वरूप साध्य है। स्याद्वाद साधक है, यथार्थ पदार्थकी साधना साध्य है। भली भावना साधक है, विशुद्ध-ज्ञान-कला साध्य है। विशुद्धज्ञानकला साधक है, निजपरमात्मा साध्य है। विवेक

साधक है, कार्य साध्य है। धर्म ध्यान साधक है, शुक्लध्यान साध्य है। शुक्लध्यान साधक है मोक्ष साक्षात् साध्य है। वीतरागभाव साधक है, कर्म अबंध साध्य है। संवर साधक है, निर्जरा साध्य है। निर्जरा साधक है, मोक्ष साध्य है। चिद्वि-कारअभाव साधक है, शुद्धोपयोग साध्य है। द्रव्यश्रुत सम्यगव-गाहन साधक है, भावश्रुत साध्य है। भावश्रुत साधक है, केवल-ज्ञान साध्य है। चेतनमें चित्त लीन करना साधक है, अनुभव साध्य है। अनुभव साधक है, मोक्ष साध्य है। नयभंगी साधक है, प्रमाण भंगी साध्य है। प्रमाण भंगी साधक है, वस्तु सिद्धि करना साध्य है। शास्त्र सम्यक् अवगाहन साधक है, श्रद्धा गुण-ज्ञता साध्य है। श्रद्धा गुण साधक है, परमार्थ पावना साध्य है। यतिजन सेवा साधक है, आत्महित साध्य है। विनय साधक है, विद्यालाभ साध्य है। तत्त्वश्रद्धान साधक है, निश्चय सम्यक्त्व साध्य है। देव-शास्त्र-गुरुकी प्रतीति साधक है, तत्त्व पावना साध्य है। तत्त्वामृत पीवना साधक है, संसार खेद मेटना साध्य है। मोक्षमार्ग साधक है, संसार खेद मेटना साध्य है।

मोक्षमार्ग साधक है, मोक्ष साध्य है। ध्यान साधक है, मनोविकार-विलय साध्य है। ध्यानाभ्यास साधक है, ध्यानसिद्धि साध्य है। सूत्र तात्पर्य साधक है, शास्त्र तात्पर्य साध्य है। नियम साधक है, निश्चयपद पावना साध्य है। नय प्रमाण निक्षेप साधक है, न्याय स्थापना साध्य है। सम्यक् प्रकार हेय उपादेय

जानना साधक है, निर्विकल्प निजरस पीवना साध्य है। परवस्तु-विरक्तता साधक है, निज वस्तु प्राप्ति साध्य है। पर दया साधक है, व्यवहार धर्म साध्य है। स्वदया साधक है, निजधर्म साध्य है। संवेगादि आठ गुण साधक हैं, सम्यक्त्व साध्य है। चेतन भावना साधक है, सहज सुख साध्य है। प्राणायाम साधक है, मनोवशीकरण साध्य है। धारणा साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, समाधि साध्य है। आत्मरुचि साधक है, अखण्डसुख साध्य है। नय साधक है, अनेकान्त साध्य है। प्रमाण साधक है, वस्तु प्रसिद्ध करना साध्य है। वस्तु ग्रहण साधक है, सकल कार्य सामर्थ्य साध्य है। परपरिणति साधक है, भव दुःख साध्य है। निज परिणति साधक है, स्वरूपानन्द साध्य है। ऐसैं साधक साध्यके अनेक भेद जानि निज अनुभव करिये। ये सब स्वरूप आनन्द पायवेकौं बताये हैं। कर्म कल्पना *कल्पित है। आत्मा सहज अनादि सिद्ध है। अनन्त सुखरूप है। अनन्त गुण महिमाकौं धरै है। वीतराग भावना भाविनतैं शुद्ध उपयोग धारि स्वरूप समाधिमें लीन होय स्वसंवेदन ज्ञान परिणति करि परमात्मा प्रगट कीजै ॥

कोई कहेगा आजके समयमें निज स्वरूपकी प्राप्ति

---

* शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर ।
मुकति-पंथ साधन यहै, वागजाल सब और ॥
पं. बनारसीदासजी कृत, नाटक समयसार ॥ १२६ ॥

कठिन है, तिसनें स्वरूप पावनेकी चाहि मेटि; वह तो बहिरात्मा *परिग्रहवंत है। किन्तु; आजसौं अधिक परिग्रह चतुर्थकालवर्ती; महापुण्यवंत नर चक्रवर्ती आदिक तिनकै था, सो इसकैं तौ थोरा है, सो परिग्रह जोरावरी इसके परिणामनमें न आवे है। यौं ही दौरि दौरि परिग्रहमें धुकै (घुसता) है। जब निठला होय, तब विकथा करै। तब स्वरूपके परिणाम करै, तौ कौन रोकै? पर-

---

* बाह्य परिग्रह चाहे थोड़ा या बहुत कितना ही क्यों न रहे, किंतु उसमें विशेषता ममत्व मूर्छा, गृद्धता या अत्यासक्ति की है। जो जितना ममत्व परिणाम वाला होगा वह उतना ही अधिक परिग्रही है, चारित्र अपेक्षा भेदज्ञानी, जितना ममत्व कम करेगा उतना अपरिग्रही है। भरत चक्रवर्ती षट्खण्डकी विंभूतिके धारक थे परन्तु वे उसके स्वाँमी नहीं थे, वे उसे कर्मोदयका विपाक समझते थे, इसी कारण उस परिग्रहमें रहते हुए भी नाम मात्रके परिग्रही थे। परन्तु जो बाह्यमें दरिद्री है किन्तु अभ्यन्तरमें ममत्व = अत्यन्त मूर्छासे युक्त है, वह बाह्य सामग्रीके संचयके विना भी बहु परिग्रही है। दूसरे बाह्य परिग्रह कितना भी क्यों न रहे, ज्ञानी जीव उसे अपना नहीं मानता, अतः वह जोरावरी या जबर्दस्तीसे किसीका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। किन्तु ज्यों ही अपने परिणामको बिगाड़ते तब बाह्य वस्तुको निमित्त कारण कहा जाता है। अतः बाह्य वस्तुको दोष देना उचित नहीं है। अपनी सराग परिणति ही घातक और बन्ध करती है। पं. बनारसीदासने ठीक कहा है कि—

ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोय।
चित्त उदास करणी करे, करम बन्ध नहिं होय॥

परिणाम सुगम, निज-परिणाम विषम बतावै है। देखो अचिरज-की बात, देखै है जानै है देख्यौ न जाय जान्यौ न जाय, ऐसैं कहत लाज हू न आवै। संसार चातुरीकौं चतुर आप जानिवेकौ शठ ऐसौ हठ धिठौही (धृष्टता) सौं पकरि पकरि पर-रत विसनकौं गाढौ भयौ। स्वभाव बुद्धि विसारी, भारी भव बांधि अंध-धंधमैं धायौ, न लखायौ आप, अब श्रीगुरु प्रताप तैं संत संग मिलाय, जातैं मिटै भवताप, आप आपही में पावै, ज्ञान लक्षण लखावै, आप चिंतन करावै, निज-परिणति बढ़ावै, निजमांहि लव लावै, सहज स्व-रसकौं पावै, कर्म बन्धन मिटावै, निज-परिणति भाव आपमैं लगावै, वर चिद् गुण-पर्यायकौं ध्यावै, तब हर्ष उपावै, मन विश्राम आवै, रसास्वादकौं जु पावै, निज अनुभव कहावै, ताकौं* दूरिको कौन, बतावै? भव-भांवरी घटावै, आप अलख लखावै, चिदानन्द दरसावै, अविनाशीरस पावै, जाको जस भव्य गावै, जाकी महिमा अपार, जानैं मिटै भव भार, महा ऐसौ +समयसार अविकार जानि लीजिये ॥

---

* मु० प्रतिमें यह वाक्य नहीं है।

+ आतम दरब जाको कारण सदैव महा, ऐसौ निज चेतन में भाव अविकारी है। ताही की धारणहारी जीवकी सकति ऐसी, तासौं जीव जीवें तिहुंकाल गुणधारी हैं॥ द्रव्य-गुण-पर्याय ये तो जीव दशा सब, इन ही मैं वस्तु जीव जीवनता सारी है। सबको आधार सार महिमा अपार जाकी, जीवन सकति 'दीप' जीव सुखकारी है॥ ५९॥

जीजिये सदैव, कीजिये सो ही, वो ही द्रोही न होय, आप अवलोय, शुद्ध उपयोग थाय, परको वियोग भाय, सहज लखाय यह जिन आगममें कही बात। तिहुंलोक नाथ है विख्यात, निज अनुराग सेती धरि वीतरागभाव, यह दाव पायो, फिरि मिलै न उपाय, ऐसो भाव धरि, जातैं मिटै भव फंद, तातैं मानथंभ मेटि, माया जलकौं जलाय, क्रोध-अग्नि बुझाय, लोभ-लहरि मिटाय, विषयभावना न भाय, चिदानन्द राय पद देखौ देखौ। निज आपकौ गवेषौ (खोजो) परवेदनाकी उच्छेदना करि, सहजभाव धरि, अंतर्वेदी होय, आनन्दधाराकौं देखि, परमात्मनिश्चयरूप देखि ॥

इस परपरिणति-नारी सौं ललचाये, कुमतिसखी संगि गतिगतिमें डोलै, निजपरिणतिराणीके वियोगतैं बहु दुःखी भये। अब निजपरिणतितियासौं अतीन्द्रिय भोग भोगवो, जहां सहज अविनाशी रस वर्षे है। पीकमें पद्मरागमणि कल्प (करि) आनन्द झूठे ही मानौ हो। ऐसैं परमें निज-भाव *कल्पा सो झूठै ही

---

* ज्ञान उपयोग योग जाको न वियोग हुवो, निहचै निहारैं एक तिहूं लोक भूप है। चेतन अनन्त रूप सासतो विराजमान, गति गति भ्रम्यो तोऊ अमल अनूप है॥ जैसैं मणि माहि कोऊ कांच खंड मानै तोऊ, महिमा न जाय वामैं वाही को सरूप है। ऐसैं ही संसारि कैं सरूव को विचारयो मैं, अनादिको अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है॥ ३०॥ (ज्ञान दर्पण)

हौंस पूरी करो, सो न होय। आकाशमें देव एक, ताके करमें चिन्तामणि, ताको प्रतिविम्ब अपने वासन (वर्तन) के जलमें देख्यौ, मनमें विचारे मेरे चिन्तामणि है, ताके भरोसें विराने (दूसरोंके) लाखौं देने किये, तौं कहा सिद्ध है? झूठ कल्पना तुमहीकौ दुखदाई है सांचौं चिन्तामणि अपने घरमें, ताकौ न देखौ! अरु प्रतिविम्बमें (चिन्तामणि) हाथि न परै। वहुत खेद करो, सो कहा वढ़ाई? अव अपनो सांचौ अखण्ड पद देखो। वह्मसरोवर आनन्दसुधारसकरि पूर्ण, जाकौ सुधारस पीवत अमर होय, सो रस पीवनो ॥

अथ अनुभववर्णनम् ॥

पौद्‌गलिक कर्म ही करि पांच इन्द्रिय छठे मन रूप वन्या संज्ञी देह, तिस देह विषैं तिस प्रमाण तिष्ठ्या हुआ भी जीवद्रव्य, इन्द्रिय मन संज्ञा नाम पावै। भाव इन्द्रिय, भाव-मन छह प्रकार उपयोग परिणाम भी भेद पड़्या है। एक-एक उपयोग परिणाम एककौं देखै *जानै। मन उपयोग परिणाम चिन्ता विकल्प देखै जानै। परिणाम विचार विकल्प चिन्तारूप मानना होय। तिन हवने (होनैं) सौं तिस परिणाम भेदकौं मन नाम कह्या। देखि, संत! अवर अव इन्हींकौं एक ज्ञानका नाम छेइ कथन करूं हौं (हूं) तिस ज्ञान (का) कथन (करने) करि दर्शनादि

* इसका विस्तृत विवेचन आत्मावलोकनके "अनुभव विवरण" के प्रकरणमें देखिये।

सब गुण आय गये। इन मनइन्द्रिय भेदोंकी ज्ञानकी पर्यायका नाम मति संज्ञा कहिये। मन, भेदज्ञान (विशेषज्ञान) करि अर्थस्यौं अर्थान्तर विशेष जानै, इस जाननेकौं श्रुत संज्ञा कहिये। दोन्यौं ज्ञानपर्याय कुरूप (विपरीतरूप) सम्यग्रूप कहिये। मिथ्यातीकैं मतिश्रुत रूप जानना है, तिस जाननै विषैं स्व-पर व्यापक अव्यापककी जाति नाहीं। तिस ज्ञेयकौं आप लखै अथवा लखता ही नाहीं। मिथ्यातीकैं जाननमैं कुरूपता-विपरीतता है। सम्यग्दृष्टि परकौं पर जानैं है, स्वकौं स्व जानै है। मिथ्याती चारित्रमैं परकौं निजरूप अवलंबै है। सम्यग्दृष्टि निजकौं निज अवलंबै है। सम्यक्ता सविकल्प-निर्विकल्प रूपसौं दोय प्रकार है। जघन्य ज्ञानीकैं जब तिस परज्ञेयकौ अव्यापक पररूपत्व जानि, आपकौं जाननरूप (ज्ञायकरूप) व्यापक जानै सो तो सविकल्प सम्यक्ता। अवरु जु आप जाननरूप (ज्ञायकरूप) आपकौं ही व्याप्य-व्यापक जान्या करै सो निर्विकल्प रूप सम्यक्ता। अवरु जो एक वेर एक ही समय विषैं (स्व) स्वकौं सर्वस्व-करि लखें, तथा सर्व परकौं पर-करि लखैं तहां चारित्र परमशुद्ध है॥

तिस सम्यक्तताकौं परम-सर्वथा-सम्यक्तता कहिये सो केवल दर्शन-ज्ञान पर्याय विषैं पाइये। अवरु जिस ज्ञेय प्रति उपयोग लगावै तिसहीकौं जानै औरकौं न जानैं। मिथ्यातीकैं वा सम्यग्दृष्टिकैं ज्ञेय प्रयुंजन ज्ञान तो एक सा है, परन्तु भेद इतना ही है कि मिथ्याती जेता जानै तेता अयथार्थरूप साधै।

सम्यग्दृष्टि तिस ही भावकौं जानै तितनैं ही यथार्थरूप साधै। तातैं तिस सम्यग्दृष्टिकैं चारित्र अशुद्ध परिणामन सौं बंध होय सकता नाहीं। तिस उपयोग परिणामौंनैं बंध, आस्रव तिन (रूप) अशुद्ध परिणामनकी शक्ति कीलि राखी है। तातैं निरास्रव–निरबन्ध है। अरु सब एक आपहीकौं आप चित्त वस्तु व्यापक व्याप्यता करि प्रत्यक्ष आप ही देखन लगैं जानन लगैं, अरु ते चारित्र परिणाम निज उपयोगमय चित्तवस्तु विषैं थिरीभूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्तैं। तिनही चारित्र परिणामजन्य [निजानन्द] होय है। यौं करि सम्यग्दृष्टिकैं दर्शन–ज्ञान–चारित्र सहित परिणाम निज चित्त वस्तु हीकौं व्याप्यव्यापकरूप देखतैं, जानतैं, आचरतैं, निजास्वाद लेय निजस्वाददशाका नाम स्वानुभव *कहिये।

स्वानुभव होतैं निर्विकल्प सम्यक्ता उपजै। (उसे) स्वानुभव कहौ, वा कोई निर्विकल्पदशा कहौ, वा आत्म-सन्मुख उपयोग कहौ, वा भावमति भावश्रुत कहौ, वा स्वसंवेदन भाव, वस्तुमगन भाव, वा स्वआचरण कहौ, थिरता कहौ, विश्राम कहौ, स्वसुख कहौ, इन्द्रीमनातीत भाव, शुद्धोपयोग स्वरूप मग्न, वा निश्चयभाव, स्वरससाम्यभाव, समाधिभाव, वीतरागभाव, अद्वैतावलंबीभाव, चित्तनिरोधभाव, निजधर्मभाव, यथास्याद रूप

---

* वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याको नाम॥ १७॥

—समयसार नाटक

यों करि स्वानुभवके बहुत नाम है। तथापि एक स्व-स्वादरूप अनुभवदशा मुख्य नाम जानना। जो सम्यग्दृष्टि चउथे (चतुर्थ-गुणस्थान) का है। तिसकैं तो स्वानुभवका काल लघु अंतर्मुहूर्त तांई रहै है। (फिर) वह (स्वानुभव बहुत) काल पीछैं होइ है। तिसतैं (अविरत सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा) देशव्रतीका स्वानुभव रहनेका काल बड़ा है। अरु वह स्वानुभव थोरे ही काल पीछैं होइ है। सर्व विरतिके स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त ताईं रहै है। ध्यानस्थों भी होय है और अति थोरे-थोरे काल पीछे स्वानुभव *सातवेंमें बारंबार हुवा ही करै, तेई परिणाम पूर्व स्वानुभवरूप भये थे तेतो स्वानुभवरूप रहै पै तहां सौं मुख्यरूप कर्मधारासौं निकसि निकसि स्व रस-स्वाद अनुभवरूप होय करि चढ़ते चले हैं। ज्यों ज्यों आगेका काल आवै है, त्यों त्यों अवरु अवरु परिणाम स्वस्वादरस अनुभवरूप होय करि चढ़ते चलें हैं। यौं करि तहां सौं अनुभवदशाका परिणाम चढ़ने करि पलटनि होय है, सो क्षीणमोह अन्त लगु (तक) जाननी।

भो भव्य! तू एक बात सुनि—हम एक बार अवरु फिर कहैं हैं, यह स्वानुभवदशा स्वसमयरूप सुख है, शान्ति विश्राम है, स्थिररूप है, निज-कल्याण है, चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है, मुख्य मोक्षराह है, ऐसा है। अरु यह सम्यक् सविकल्पदशा यद्यपि उपयोग निर्मल है तथापि यहां चारित्र

---

* सातवें गुणस्थानमें स्वानुभवदशा बारम्बार हुआ ही करती है।

परिणाम परालम्ब अशुद्ध चंचल होतैं संतैं सविकल्प दशा दुःख है। तृष्णा करि चंचल है। पुण्य-पापरूप कलाप है। उद्वेगता है। असंतोषरूप है। ऐसैं ऐसैं विलापरूप है। चारित्र परिणाम दोन्यौं तैं अवस्था आप विषैं देखी है। तिसतैं भला यह जु तूं स्वानुभव रूप रहनेका उद्यम राख्या कर, यह हमारा वचन व्यवहार करि उपदेश कथन है। जेती जेती विशुद्धता थिरता गुणस्थान माफिक वढ़ी तेता तेता सुख बढ़्या। बारमैं (गुणस्थान) लगु (तक) कषाय घटनैंतैं थिरता बढ़ी। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं स्वसंवेदन रस बढ़्यौ। स्वसंवेदन थिरता करि उपज्यौ रसास्वाद स्वानुभव सो अनन्त सुख मूल है॥

सो अनुभव धाराधर (मूँसलाधार वर्षा) जगैं दुःख दावानल रंच न रहतु है। स्वानुभव (हीको) भव-वास-घटा भानवेकौं (नाश करकेके लिये) परम प्रचण्ड पवन मुनिजन कहतु *हैं। अनुभवसुधापान करि भव्य अमर अनेक भये। परम पूज्य पदकौं अनुभव ही करै है। सब वेद पुराण या विनु निरर्थक है। स्मृति-विस्मृति है। शास्त्रार्थ व्यर्थ है। पूजा भजन मोह है। अनुभव विना निर्विघ्न कार्य विघ्न है। परमेश्वर कथा सो भी

* अनुभौ अखण्ड रस धाराधर जग्यौ जहां, तहां दुःख दावानल रंच न रहतु है। करम निवास भव वास घटा भानवेकौं, परम प्रचण्ड पौनि मुनिजन कहतु है॥ याको रस पियैं फिर काहू की न इच्छा होय, यह सुख दानी सब जगमें महतु है। आनन्दको धाम अभिराम यह सन्तनकौ, याहीके धरैया पद सासतो लहतु है॥ १२७॥ (ज्ञानदर्पण)

झूंठी है। तप भी झूंठ है। तीर्थ सेवन झूंठ है॥

तर्क पुराण व्याकरण खेद है। अनुभव विना ग्राम विषैं गाय, स्वान, वनमैं हिरणादि ज्यों अज्ञान तपसो (है), अनुभव प्रसादतैं नर कहूँ रहो सदा पूज्य है। अनुभव आनन्द, अनुभव धर्म, अनुभव परमपद, अनुभव–अनन्त–गुण–रस–सागर अनुभवतैं सिद्ध हैं, अनुपम ज्योति, अमित तेज, अखण्ड, अचल, अमल, अतुल, अबाधित, अरूप, अजर, अमर, अविनाशी, अलख, अछेद, अभेद, अक्रिय, अमूर्तिक, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, अविगत, आनंद-मय, चिदानन्द इत्यादि अनन्त परमेश्वरका सर्व विशेषणोंको अनुभव सिद्ध करता है। तातैं अनुभव सार है। मोक्षको निदान सव विधानको शिरोमणि, सुखको निधान, अमलान अनुभव है। अनुभवी जीव मुनिजनके चरणारविंद इन्द्रादि सेवैं *हैं। तातैं

* पर पद आपो मानि जगमें अनादि भम्यो, पायो न स्वरूप जो अनादि सुख थान है। राग–द्वेष भावनमें भव–थिति बाधा महा, विना भेदज्ञान भूल्यो गुणको निधान है॥ अचल अखण्ड ज्ञान-ज्योतिको प्रकाश लियें, घरमें ही देव चिदानन्द भगवान है। कहै 'दीपचन्द' आप इन्द हू से पाय परै, अनुभौ प्रसाद पद पावै निरवान है॥ १२४॥

दोहा—चिद लक्षण पहिचान तैं, उपजै आनंद आप।
अनुभौ सहज सरूप को, जगमैं पुण्य प्रताप॥ १२५॥

जगमें अनादि यति जेते पद धारि आये, तेउ सव तिरै लहि अनुभौ निधानकों। याके विनु पाये मुनि हू सुपद निदत हैं, यह सुख सिन्धु दरसावै भगवानको॥ नारकी हू निकसि जे तीर्थंकर पद पावें, अनुभौ प्रभाव पहुँचावै निरवाणको। अनुभौ अनन्त गुण धामके धरैया ही को, तिहूं लोक पूजै हित जानि गुणवानको॥ १२६॥

अनुभव करि, ये ग्रंथ ग्रन्थनमें अनुभवकी प्रशंसा कही है अनुभव विना साध्य सिद्ध कहूँ नांहीं। अनन्त चेतना चिन्हरूप अनन्त गुण मण्डित, अनन्त शक्ति धारक, आतम पदको रसास्वाद अनुभव कहिये।

वारंवार सर्व ग्रन्थको सार, अविकार अनुभव है। अनुभव शासतो चिंतामणि है। अनुभव अविनाशी रस कूप *है। मोक्षरूप अनुभव है। तत्त्वार्थसार अनुभव है। जगत उधारण अनुभव है अनुभवतैं आनको उच्च पद नांहीं। तातैं अनुभव सदा स्वरूपको करिये। अनुभवकी महिमा अनन्त है। कहां लौ बताइये। आठ कर्म आत्मप्रदेश परि आपणी थिति करि बैठे सर्व पुद्गलका ठाठ है। तिनके विपाकके उदय करि चिदविकार

दोहा—गुण अनन्तके रस सर्वे, अनुभौ रस के मांहि। यातैं अनुभौ सारिखो और दूसरो नांहि॥ १५३॥ पंच परम गुरु जे भये, जे होंगे जग मांहि। ते अनुभव परसाद तैं यामैं धोखो नांहि॥ १५४॥

* अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रस कूप।
अनुभव मारग मोख को, अनुभव मोख सरूप। १८॥

अनुभौ के रस को रसायन कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहु तीरथ की ठौर है। अनुभवकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनुभौ अधोरसासौं ऊरध की दौर है॥ अनुभौ की केलि यहै कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौ को स्वाद पंच अमृत को कौर है। अनुभौ करम तोरै परम सौं प्रीति जोरै, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है॥ १६॥ (नाटक समयसार उत्थानिका १८, १९)

भया, सो विकार जीवका है। वर्गणा नोकर्म, द्रव्यकर्म रूप सब पुद्गल हैं। भाव जीवके हैं। एक सौ अठतालीस प्रकृति वर्गणा जड़ वणी है। उनके विपाक उदय व्यक्तता (का) निमित्त पाय चिद्विकार भया, सो विकारका स्वांग जीवनैं धरचा है। इस (यह) ज्ञेय रंजक अशुद्धभाव उस शुद्धभावकी शक्ति अशुद्ध भई, तब भया है। अशुद्ध परिणामनके निमित्ततैं यह कर्ममल *लगा है। पर इसनैं किया, तातैं इसका है। इसका मूलभाव नाहीं, काहेतैं? वादर (मेघ) की घटा काल, श्याम पीत, हरितरूप भये आकाश वैसा न भया। जैसैं रतन परि मांटी बहुत लपटी परि (परन्तु) रतनका प्रकाश मांटीके लपटैं न गया। अंतरशक्ति ज्योंकी त्यौं है। त्यौं आत्माके अशुद्ध भाव भयें आतमका दरशन ज्ञान शक्ति अन्तर (आभ्यन्तरमें) ज्योंकी त्यौं है। पर पुद्गलका नाटक बहुत वन्या है। सो पुद्गलका खेल जान, तूं अपने आतमाका खेल मति जानै॥

सो कहिये है, दशधा परिग्रह क्षेत्र, बाग, नगर, कूप, वापी, तड़ाग, नदी आदि जेतेक पुद्गल, माता, पिता, कलत्र, पुत्र, पुत्री, वधू, वन्धु स्वजनादि, जावंत सर्प सिंह व्याघ्र गज महिषादि, जावतं दुष्ट शब्द अक्षर अनक्षर शब्दादिवान वाच्य स्नान भोग संजोग वियोग क्रिया, जावतं परिग्रह मिलाप सो वड़ा परिग्रह, नाश सो दलिद्रादि क्रिया, जावंत चलना वैठना हलना बोलना

* यह पंक्ति मु० प्रतिमें अशुद्ध है।

कांपनादि क्रिया, जावंत लड़ना भिड़ना चढ़ना उतरना कूदना-नाचना खेलना गावना वजावना आदि जावंत क्रिया सर्व पुद्गल-का खेल जानु। नर, नारक, तिर्यंच, देव इनके विभव भोगकरण विषयरूप इन्द्रियनिकी क्रियादि सब पुद्गल (का) नाटक है। द्रव्यकर्म, नोकर्मादि सब पुद्गल अखारा है। तामैं तूं चिदानन्द रंजित होय अपना जानै है। अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनंत गुणका अखारा परणति पातरा नाचैं, स्वरूप रस उपजावैं, जेते गुणकौं वेदैं, द्रव्य वेदैं, सब भाव भये (स्वरूप) सत्ता मृदङ्ग प्रमेय ताल इत्यादि सब निज अखारा है। ऐसैं अपने निज अखारेमैं न रंजि, परके अखारेमैं ममत्व किया जिसका जन्मादि दुःखफल आपने पाया, अब अपने (आपका) सहज स्वादी होय पर-प्रेम मिटाय चेतना प्रकाशका विलासरूप अतीन्द्रिय भोग भोगि, कहा झूठे ही छनैं जड़मैं आपा मानैं हैं। अर परकौं कहै—हमकौं दुःख दे है। (लेकिन) यामैं शक्ति दुःख देनेकी नाहीं। विरानै सिर झूंठा उलाहना दे है, अपनी हरामजादगीकौं न देखै है। अचेतनकौं नचावत फिरत है, सो लाजहू न आवत है। मडे सौं (मुर्दा सों) सगाई करि अब हम इससौं व्याह करि संबंध करैंगे सो ऐसी वात लोकमैं हू निंद्य है।

तुम तौ अनन्तज्ञानके धारी चिन्दानन्द हो। अनादि झूंठी विडम्बना जड़सौं आपा माननैंकी मेटो। तुम एक (मात्र) पर-मानि छांड़ो। पराचरण ही तैं तुमारा दर्शन-ज्ञानमैं लाभ न

भया है। यदि देखनैं जानने तैं जो बंध होता, तो सिद्ध लोकालोककों देखते हैं. जानते हैं तेहू वंधते, तिसतैं परिणाम तादात्म्य नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान न बंधैं हैं। परिणामहीतैं संसार, परिणामहीतैं मोक्ष मानि, परिणाम ही राग-द्वेष-मोह परिणाम करै। इनका जतन हूं (रक्षा भी) परिणाम (ही) करै, ज्ञान-दर्शनमें राग–द्वेष नाहीं, वे देखवे जानवे मात्र हैं। इसकी विकारतातैं वे हू विकारी कहावैं। यदि देखना जानना राग-द्वेष-मोह करि होय तो बंधै, राग–द्वेष–मोह न होय तो न बंधै यह परिणाम शुद्धता अभव्यकैं न होय, तातैं ज्ञान-दर्शन शुद्ध न होय। भव्यकैं परिणाम स्वरूपाचरणके होंय तातैं ज्ञान-दर्शन शुद्ध होय। उक्तं च

स्वानुष्ठान विशुद्धे दृग्बोधे जायते[1] कुतो जन्म।
उदिते गभस्तिमालिनि किं न विनश्यति तमो नैश्यम्[2] ॥ १९ ॥

पद्मनन्दिपच्चीसीके निश्चय पंचाशत प्रकरण

यहां कोई प्रश्न करै कि वस्तु देखिये नाहीं, जानिये नाहीं, परिणाम वामें कैसैं दीजिये? ताका समाधान--पर दीखता है जानिये है सो परका देखनेवाला उपयोग है, तौ देखै है, ज्ञान है तौ जानै है। उपयोग तौ ठावा (निश्चल, स्थिर)

---

१. क० ख० प्रतिमें 'जृंभते' पाठ पाया जाता है।

२. इस पद्यका भावानुवाद इस प्रकार है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार विनाश हो जाता है इसी प्रकार सम्यक्चारित्रसे विशुद्ध दर्शन-ज्ञानके होने पर फिर संसारमें जन्म नहीं होता।

भया नास्तिरूप हुआ, जो यह उपयोग ग्रह्या तिस ही में परिणाम धरि थिरता धरि आचरण करि विश्राम गहूँ। येता ही (इतना ही) परिणाम शुद्ध करनेका काम है उक्तं च— "उवओगमओ जीवो" इति वचनात्। जातैं परिणाम वस्तु वेद्य स्वरूप लाभ ले, वस्तुमें लीन होय है। स्वरूप निवास परिणाम ही करै हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव (ध्रौव्य) परिणाममें आया, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें सत् आया[1]। सत् तामें स्वरूप सब आय गया तातैं परिणाम शुद्धतामें सब शुद्धता आई॥ उक्तं च—

जीवो परिणामदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो[2]॥
(प्रवचनसार १-९)

परिणाम सर्व स्व-स्वरूपका है। पराचरणके दोय भेद हैं—द्रव्य पराचरण और भावपराचरण किन्तु नोकर्म उपचार (द्रव्य) पराचरण है, परंपरा करि अनादि उपचार है। देवादिक देहका धारण सादि उपचार है। द्रव्यकर्म जोग अनादि उपचार है। भावकर्म अशुद्ध निश्चयनय करि है। द्रव्यकर्म नोकर्मका द्रव्यपराचरण उपचारतैं हैं। भाव पराचरण राग-द्वेष-मोह है

१. उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्; सद्द्रव्य लक्षणम्, तत्त्वार्थसूत्र (५-२९-३०)

---

२. इसका भावानुवाद निम्न प्रकार है:—जब परिणाम स्वभावधारी यह जीव शुभ अथवा अशुभरूप परिणामोंसे परिणमता है तब शुभ व अशुभ होता है, और जब शुद्ध परिणमोंसे परिणमता है तब निश्चयसे शुद्ध होता है।

तिसका आचरण है। कोई प्रश्न करै—जो रागादि जीवके भाव हैं, परभाव स्पर्श रस आदि हैं। रागादिककों परभाव क्यों कहे? ताका समाधान—शुद्धनिश्चयनयसे रागादि जीवके नहीं, ये भी पर हैं, काहेतें? ये भावकर्म हैं इनके नाशतें मुक्ति है। पर हैं तो छूटै हैं, तातें पर ही कहिये। जब यह रागादिकों अपनें न मानेंगा तब भवबंधपद्धति मिटैगी। तिसतैं पर रागादि तजि शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं, सो आप जानि ग्रहै, यह मुक्तिका मूल है[१]। परिणाम जिधरकों धुकै जैसा हो है। तातैं पर-छांडि निज परिणाम स्वरूपमैं लगाओ। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य षट्गुणी वृद्धि-हानि अर्थक्रियाकारक परिणामतैं सधै हैं॥

आगै देवाधिकार लिखिये है॥

काहेतैं? देव तैं परममङ्गल रूप निजानुभव पाइये है। तातैं देव उपकारी हैं। देव परमात्मा है। अरहंत परमात्मा साकार है। शरीर युक्त हैं। तातैं सिद्ध निराकार हैं। किंचितून्युन चरमशरीरतैं आकार तातैं साकार भी कहिये हैं अरहंतकै अघातिकर्म रहे तातैं बाह्य विवक्षमैं च्यारि गुण व्यक्त न भये।

---

१. सद्गुरु कहे भव्य जीवनिसौं, तोरहु तुरित मोहकी जेल। समकित-रूप गहौ अपनौं गुन, करहु शुद्ध अनुभवको खेल॥ पुद्गल पिण्ड भाव-रागादिक, इनसौं नहीं तुम्हारो मेल। ऐ जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसैं भिन्न तोय अरु तेल॥ नाटक समयसार॥ १२॥

ज्ञानमें सब व्यक्त भये। सो कहिये हैं। नामकर्म मनुष्य गति रूप है। तातैं सूक्ष्म बाह्य नहीं। केवलज्ञानमें व्यक्त है। वेदनी है तातैं बाह्य अबाधित नहीं। अन्तरमें ज्ञानमें व्यक्त हैं। अवगाह बाह्य नहीं। आपतैं ज्ञानमें व्यक्त है अगुरुलघुगोत्रतैं बाह्य व्यक्त नहीं, ज्ञानमें है। यह अघाति हूं तैं व्यक्त नाम न पाया। नाम स्थापना द्रव्यभाव पूज्य हैं अरहंतके नाम लेत ही परमपदकी प्राप्ति होय॥ उक्तं च

जिन सुमरो जिन चितवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परम पय, लहिये एक क्षणेन। १॥

जिन स्थापनातैं सालंबध्यान करि निरालंब पद पावै है।

कैसी है स्थापना—

किं ब्रह्मैकमयी किमुत्सवमयी श्रेयोमयी किं किमु।
ज्ञानानन्दमयी किमुन्नतमयी किं सर्वशोभामयी॥
इत्थं किं किमिति प्रकल्प न परैस्त्वन्मूर्तिरुद्वीक्ष्यता (ताम्)
किं सर्वातिगमेव दर्शयति सा ध्यानप्रसादान्महः॥ १॥
मोहोद्दामदवानलप्रशमने पाथोदवृष्टिसमः।
स्रोतो निर्झरणी समीहित विधौ कल्पेन्द्रवल्ली सताम्।
संसार प्रबलान्धकार मथने मार्तण्डचण्ड द्युति-
जैनी मूर्तिरुपास्यतां शिव सुखे भव्यः पिपासास्ति चेत्[१]॥

स्वसंवेदन रूप वीतराग मुद्रा देखि स्वसंवेद भावरूप अपना स्वरूप विचारैं— पूर्वे ये सराग थे, राग मेटि वीतराग

---

१. इन पद्योंका भावानुवाद इस प्रकार है:—हे भव्य! यदि तुझे मोक्ष सुखकी पिपासा है, उसे प्राप्त करनेकी उत्कट अभिलाषा है, तो तुम्हें जैन मूर्तिकी उपासना करनी चाहिये। वह मूर्ति क्या ब्रह्मस्वरूप है, क्या उत्सवमय है, श्रेयरूप है? क्या ज्ञानानन्दमय है?

भये। अब मैं सराग हौं, इनकी ज्यौं राग मेटौं तो वीतराग मेरा पद मैं पावौं। निश्चय (से) मैं वीतराग हूं॥ उक्तं च—

"पिच्छहु अरहो देवो पच्छर घड़ियो हु दरसयं मग्गं"

इति वचनात्॥ इस स्थापनाके निमित्तैं तिहुँ काल तिहुँ लोकमें भव्यजीव धरम साधै हैं। तातैं स्थापना परम पूज्य है। द्रव्य जिन द्रव्यजीव सोहू भाव पूज्य हैं। तातैं पूज्य भावि नय (से है) अथवा तीन कल्याण तक द्रव्य जिन हैं। सो पूज्य हैं। भावजिन समोशरणमण्डित अनन्त चतुष्टय युक्त भव्यनकौं तारैं, दिव्यध्वनितैं उपदेश देय करि साक्षात् मोक्षमार्गकी वर्षा करैं, ये परमातमा भावजिन कहिये॥

आगैं सिद्धदेवका वर्णन कीजिये है॥ सिद्ध निराकार प मातमा है। अनन्त गुण रूप भये, अपने अनन्त सुखकौं गुण-

---

क्या उन्नतरूप है और क्या सर्व शोभासे सम्पन्न है। इस तरहसे अनेक विकल्पोंसे क्या? ध्यानके प्रसादसे आपकी मूर्तिको देखनेवाले भव्योंको क्या वह सर्वातिग तेजको दिखलाती है? अपितु दिखलाती ही है। और जो मूर्ति मोहरूपी प्रचण्ड दावानलको शान्त करनेके लिये मेघ-वृष्टिके समान है, जो इच्छित कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये निर्झरणी (नदी) का स्रोत है, जो सज्जनोंके लिये कल्पेन्द्रवली है, कल्पलताके सदृश अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली है, और संसाररूपी प्रबल अन्धकारको मथन करनेके लिये मार्तण्डकी प्रचण्ड द्युति है, सूर्यका प्रबल प्रकाश है। अतः हे भव्य ऐसी उस वीतराग मूर्तिकी (स्वसन्मुखतासहित) उपासना जरूर करनी चाहिये।

निकरि पर्यायतैं वेदि, द्रव्य-गुणकौं भोगवै हैं। लोकशिखर पर[1] तिष्टै हैं षड्गुणी वृद्धि-हानि (रूप) अर्थपर्याय किंचून चरम देहतैं प्रदेशनिकी आकृति-आकार (रूप) व्यंजनपर्याय (से सहित हैं)। उक्तं च—

मोम गयो गलि मूसिमैं जारस अंबर होय।
पुरुषाकारैं ज्ञान-मय वस्तु प्रमानौं सोय ॥

देवकौं जानैं, तब स्वरूप अनुभव होय है।

॥ इति देवाधिकारः ॥

॥ अथ ज्ञानाधिकारः ॥

ज्ञान लोकालोक सकल ज्ञेयकौं जानैं, निश्चय जानन रूप स्वरूप है ऐसी ज्ञानकी शक्ति है। संसार अवस्थामैं अज्ञान-रूप भई है। तौऊ निश्चयतैं निजशक्ति न जाय है। बादर-घटाके आवरणतैं सूर्य तेज न जाय, त्यौं ज्ञानावरणतैं ज्ञान न जाय, आवर्‌चा जाय नाश न होय। ज्ञान सब गुणमैं बड़ा गुण

---

१. ध्यान हुताशनमें अरि ईंधन, झोंक दियौ रिपुरोक निवारी।
शोक हर्यौ भवि लोकनको वर, केवलज्ञान मयूख उघारी ॥
लोक अलोक विलोक भये शिव जन्म जरा मृत पंक पखारी।
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक तिन्हैं पग धोक त्रिकाल हमारी ॥ ११ ॥
तीरथनाथ प्रनाम करैं, तिनके गुन वर्ननमें बुधि हारी।
माम गयौ गलि मूस मंझार, रह्यो तहँ व्योम तदाकृती धारी ॥
लोक गहीर नदी पति नीर, गये तिर तीर भये अविकारी।
सिद्धन थोक बसैं, शिवलोक, तिन्हैं पग धोक त्रिकाल हमारी ॥
('जैन शतक' पं० भूधरदास—सिद्ध स्तुति)

है। इसमें अनन्त गुण व्यक्त जानैं। ज्ञान बिना ज्ञेयका ज्ञान न होय। ज्ञेय बिना जानवे योग्य कुछ भी न होता। यातैं ज्ञान प्रधान है। अनन्त गुणात्मक वस्तु तौऊ ज्ञान मात्र ही है। आचार्य बहु ग्रन्थनमैं आतमा ऐसौ कह्यौ। काहेतैं? "लक्षण प्रसिद्ध्यालक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्" जैसैं मन्दिर श्वेत कहिये यद्यपि मन्दिर स्पर्श रस श्वेतादि बहु गुण धरै है, तथापि दूरितैं श्वेत गुणकरि भासै, तातैं मुख्यतातैं श्वेत मन्दिर कहिये। प्रसिद्ध लक्षण आत्मामैं ज्ञान है। तातैं ज्ञानमात्र आत्मा कह्यौ। एक एक गुणकी अनंतशक्ति अनंत पर्याय गुणकी एक अनेक भेदादि सब जानैं, ज्ञान विना वस्तु सर्वस्व निर्णयरूप स्वरूपकौं न जानै, तातैं ज्ञान प्रधान है। मतिज्ञानादि ज्ञानके पर्याय हैं। सो क्षयोपशम ज्ञान अंश (भेद) शुद्ध भये। तातैं पर्याय ज्ञेयाकार ज्ञानपर्यायकरि लोकालोक जानैं है। ज्ञेयका नाश होत है, परि ज्ञानका नाश नाहीं; तातैं जेतौ ज्ञेय तेतौ ज्ञान, मेचक उपयोग लक्षण ज्ञान, उपचारतैं ज्ञानमैं ज्ञेय है। तातैं वस्तु स्वरूपमैं ज्ञेयका विनाशसे, ज्ञानका विनाश नाहीं॥

यहां कोई तर्क करै—ज्ञानमैं सकल ज्ञेय उपचारतैं हैं। तो सर्वज्ञपद उपचरित भयो, उपचार झूंठा है। तो कहा सर्वज्ञपद झूंठ भयो? ताका समाधान—जाकै उपचार ही मात्र मैं लोकालोक भास्यौ, तौ वाकै निश्चयज्ञानकी महिमा कौंन कहै? यह ज्ञान स्वसंवेदन ही भया सबकौं जानैं, आपके जानैं

परका जानना थपैं (ज्ञेय) परके जानै* स्वका जानना थपै है। परकी अपेक्षा आप है, आपकी अपेक्षा पर है। विवक्षातैं वस्तु सिद्धि है, ज्ञानतैं स्वरूपानुभव है। यह ज्ञानाधिकार है।

॥ अब ज्ञेयाधिकार लिखिये ॥

"ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं" ज्ञेय जानवे योग्य पदार्थकों कहिये। सो पदार्थकी तीन अवस्था हैं। द्रव्य अवस्था, गुण अवस्था, और पर्याय अवस्था॥ द्रव्य अवस्था मुख्य है। काहेतैं? पदार्थ द्रव्य अवस्था न धरै तौ द्रव्य विना गुण-पर्यायका व्यापना न होय, तब द्रव्य न होय, तब पदार्थ न होय, तातैं द्रव्य अवस्था मुख्य है। पीछैं गुण अवस्था है। काहेतैं? गुण विना द्रव्य न होय। तातैं "गुणसमुदायो दव्वं ऐसा जिन वचन है। पर्याय अवस्था न होय तौ वस्तुकौं परणावै कौन? उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य न सधै, षड्गुणी वृद्धि-हानि न होय, तब अर्थपर्यायका अभाव भये, वस्तुका अभाव होय तातैं पर्याय अवस्थातैं सर्व सिद्धि है।

द्रव्य, गुण-पर्यायकौं व्यापै, गुण द्रव्य–पर्यायकौं व्यापै, पर्याय गुण-द्रव्यकौं व्यापै, तीनौं अवस्था पदार्थकी हैं। पदार्थ सत्व अवस्था करि अस्ति है, पर चतुष्टय अवस्थातैं नास्ति है, गुण अवस्थातैं अनेक हैं, वस्तु अवस्थातैं एक हैं गुणादि भेद करि भेद रूप हैं, अभेद वस्तु स्वरूप करि अभेद है, द्रव्य करि

---

* यह वाक्य मु० प्रतिमें नहीं है।

नित्य है, पर्याय करि अनित्य है, शुद्ध निश्चयतैं शुद्ध है, सामान्य विशेषरूप वस्तु वस्तुतत्त्व है; द्रव्यके भावकौं धरै द्रव्यत्व है, प्रमेयके भावकौं धरैं प्रमेयरूप है, अगुरुलघुके भावकौं धरै अगुरुलघु अवस्था है, प्रदेशकौं धरै प्रदेशरूप है, अन्यत्वगुण लक्षण भेद अन्यकरि अन्यत्व है, स्व-परकरि अन्य है, नाना पदार्थतैं अन्य है, द्रव्यत्व है, पर्यायत्व है, सर्वगत, असर्वगत, अप्रदेशत्व है, मूर्त है, अमूर्त है, सक्रिय—अक्रिय, चेतन-अचेतन, कर्तृत्व-अकर्तृत्व, भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व, नाम उपलक्षण क्षेत्र, स्थिति, संथान सरूप फल द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, संज्ञा संख्या-लक्षण-प्रयोजन-तत्स्वभाव, अतत्स्वभाव, सप्तभंगरूप अन्योन्य-गुण करि सिद्धि, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाह हेतुत्व-वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, मूर्तत्व आदि विशेष गुण पदार्थ सामान्य विशेष स्वभावकौं धरै हैं। नाना पदार्थ एक पदार्थ करि जैसी विवक्षा होय तैसी समझ लेणी ॥

पदार्थ सत्तारूप है। सत्ता, महासत्ता* अवान्तर सत्ता÷ दोय भेद लिये है। सत्त्वं-असत्त्वं, त्रिलक्षणं-अत्रिलक्षणं, एकत्वं-अनेकत्वं, सर्वपदार्थस्थितत्वं-एक पदार्थ स्थितत्वं, विश्वरूपं एकरूपं, अनंतपर्यायत्वं-एकपर्यायत्वं, द्रव्य ऐसा द्रव्य भाव सर्व

---

* समस्त पदार्थोंके अस्तित्वगुणके ग्रहण करनेवाली सत्ताको महासत्ता कहते हैं।

÷ किसी विवक्षित पदार्थकी सत्ताको अवान्तर सत्ता कहते हैं।

द्रव्यमैं महासत्ता जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य स्वरूपरूप वर्तै अवांतरसत्ता, द्रव्यसत्ता, अनादि-अनन्त पर्यायसत्ता सादि-सांत-स्वरूप सत्ता, तीन प्रकार, द्रव्यस्वरूप सत्ता, गुण-सत्ता पर्याय सत्ता, गुणसत्ताका अनंत भेद, ज्ञानसत्ता दरसनसत्ता अनंगुण-सत्ता पृथक् भेद न छे (नहीं है), अनन्यत्व भेद छे। जेते कछु निजद्रव्यगुण परद्रव्य गुण हैं। जेतीक सब द्रव्यनकी अतीत अनागत वर्तमान पर्याय तीन कालके नव पदार्थ द्रव्य गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब ज्ञेय नाम आगममैं कह्या है। ज्ञानगोचर जो कछु होय, सो सब ज्ञेयनाम जानौं। "ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं" यह ज्ञेयाधिकार ज्ञेय जानि परकौं व्यंजन करै, अतः निज ज्ञेयकौं जानि स्वरूपानुभव करणां ॥

॥ आगैं निजधर्माधिकार कहिये हैं ॥

निज धर्म वस्तुस्वभाव, सो आत्मा (का) निज धर्म, निर्विकार सम्यक् यथारूप अनंत गुण–पर्याय स्वभाव सो धर्म कहिये। निश्चय ज्ञानदर्शनादि अपना धर्म है। जीव निजधर्म धरत ही परम शुद्ध है। निज कहिये आप, तिसका धर्म कहिये स्वभाव, सो निजधर्म कहिये। (प्रश्न) अपने स्वभावरूप सब पदार्थ हैं। उनका धर्म उनका निज धर्म है। आत्माका* आतमामैं है। तातैं दर्शन–ज्ञान ही कौं निजधर्म ऐसा मति कही? ताका समाधान—स्वभाव तौ सब सब ही कहे हैं।

---

* यह वाक्य मु० प्रतिमें नहीं है।

उनका धर्म उनका स्वभाव यह तो यों ही है। परि तारणधर्म सजीवधर्म, प्रकाशधर्म, उनके धर्मकौं, प्रगटै। ऐसा धर्म, परम धर्म, हितरूपधर्म, असाधारण धर्म अविनाशी सुखरूपधर्म, चेतनाप्राणधर्म, परमेश्वरधर्म, सर्वोपरिधर्म, अनंतगुणधर्म, शुद्ध स्वरूपपरिणति धर्म, महिमा अपार धारक धर्म, निज शुद्धात्म स्वभावरूप धर्म, सो निजधर्म है। इनका विशेष भेद कहिये हैं ॥

यह अनादि संसारमें जीव, कर्म योगतैं जन्मादि दुःख भोगवै है। इस पर-धर्मकौं, निजधर्म मानै हैं। तातैं दुःख पावै हैं। यह तो सांच है। काहेतैं? जो सिरदार, प्रधान पुरुषकौं निद्यमें गिणै सो दण्ड सहै। न्द्य देहमें चेतनधर्म मानैं, सो दुःख पावै ही पावै। शुद्ध चैतन्य धर्मकौं जब धर्म जानै तब संसार तारण धर्म, अनन्त चेतनारूप धर्म तातैं शुद्धचैतन्य जीव धर्म, स्वज्ञेय परज्ञेय प्रकाशै यातैं प्रकाश धर्म, सब द्रव्यनिके धर्म यानैं प्रगट किये उनके धर्मकौं प्रगटै ॥ सब तैं उत्तम यातैं परम धर्म, निजरूप तैं अनन्त सुख होय यातैं हित धर्म, और में न पाइये यातैं असाधारण धर्म, अविनाशी आनन्द सहजरूप तातैं अविनाशी सुखरूप धर्म, चेतनाप्राण धरै तातैं चेतनाप्राण धर्म, परमेश्वर सहज रूप (है) ऐसे स्वभाव मय परमेश्वर धर्म, सबतैं उत्कृष्ट है तातैं सर्वोपरि धर्म, अनन्त गुण है स्वभाव जाकौं तातैं अनन्तगुणधर्म शुद्धस्वरूप सदा परणमै शुद्ध भये तातैं शुद्ध स्वरूप परिणतिधर्म, अपार महिमा

कौं लिये तातैं अपार महिमा धारक धर्म, अनन्त शक्तिकौं धरै। अनंत शक्तिरूप धर्म, अनंतपर्याय एक गुणकी, ऐसे अनंत गुण अनंत महिमाकौं धरै, सो निज धर्मकी महिमा कहां लौं कहिये? एकदेश निजधर्म धरै, हू संसार पार होय है। काहेतैं एक-देश भये सर्वदेश होय ही होय। तातैं जानि, यौं 'पर-धर्म तैं अनन्त दुःख, निजधर्म तैं अनन्त सुख'॥ यातैं निजधर्मकौं धारि अपना परमेश्वर पद प्रगट कीजै। निज धर्मकी धारणा अनुभवतें होय। निज धर्म भये अनुभव होय। यातैं अनुभवसार सिद्धि निमित्त निज-धर्म अधिकार कहा॥

आगै मिश्र धर्म अधिकार कहिये हैं।

सो मिश्र धर्म अन्तरात्माकै है, सो काहेतैं? सम्यक्स्वरूप-श्रद्धान जेते कषाय अंश हैं ते ते राग-द्वेष धारा हैं। आत्म-श्रद्धाभाव मैं आनन्द होय है। कषाय सर्वथा न गई, मुख्य श्रद्धा भाव, गौण परभाव, एक अखण्ड चेतनाभाव सर्वथा न भया, तातैं मिश्रभाव है। अज्ञानभाव बारमें (गुणस्थान) तक एकोदेश अज्ञान चेतना है। अरु कर्मचेतना भी है। तातैं मिश्रधारा है। स्वरूप उपयोग-मैं प्रतीति भई; परि शुभाशुभ कर्मकी धारा बहै है। तिनसौं रंजक भाव कर्मधारामें है। पर (परन्तु) श्रद्धान स्वरूप मुक्ति कारण है। भव बाधा मेटनेकौं समर्थ है। ऐसा कोई कर्मधाराका दुर्निवार आंटा है, (यद्यपि) प्रतीतिमें स्वरूप ठावा किया है। तौं हूं सर्वथा न्यारा न होय है, मिश्र रूप है। यहां कोई प्रश्न करै—कि,

सम्यक्गुण सर्वथा क्षायिक सम्यग्दृष्टिके भया है वा न भया है? ताका समाधान कहौं—जो कहोगे, सर्वथा भया, तौ सिद्ध कहौ। काहेतैं? एक गुण सर्वथा विमल भये सब शुद्ध होय, सम्यक्गुण सब गुणमैं फैल्या है, सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन सब गुण सम्यक् भये। सर्वथा सम्यग्ज्ञान नहीं, एकोदेश सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा ज्ञान सम्यक् होता तौ सर्वथा सम्यक्गुण शुद्ध होता, तातैं सर्वथा न कहिये। जो किंचित् सम्यक्गुण शुद्ध कहिये, तौ सम्यक्गुणका घातक मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धो कर्म था सो तो न रह्यो। जिस गुणका आवरण जाय सो गुण शुद्ध होय। तातैं किंचित् हूं न बणै।

सो कैसे है! सो समाधान करिये है सो आवरण तौ गया परि सब गुण सर्वथा सम्यक् न भये। आवरण गये तैं सम्यक् सब गुण सर्वथा न भये तातैं परम सम्यक् नाहीं। सब गुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक् होय तब परम सम्यक् ऐसा नाम होय॥ विवक्षा प्रमाणतैं कथन प्रमाण है। जिस (सम्यग्) दर्शन परि पौद्गलिक स्थिति जैसैं नाश भई, तब ही इस जीवका जो सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्वरूप परणम्या था, सोई सम्यक्गुण संपूर्ण स्वभावरूप होय परणम्यां—प्रगट भया। चेतन-अचेतनकी जुदी प्रतीति सौं सम्यक्तगुण निज जाति स्वरूप होय परणम्या, तिसीका लक्षण ज्ञानगुण अनंत शक्ति करि विकार-रूप होय रह्या था, तिन गुणकी अनंतशक्ति विषै केतेक शक्ति

प्रगट भई। ताका सामान्य मों नाम मति श्रुति भयो कहिये। अथवा निश्चयज्ञान श्रुत पर्याय कहिये, जघन्यज्ञान कहिये। अवर सर्वज्ञान शक्ति रही, ते अज्ञान विकाररूप होय है। इन विकार शक्तिनकौं धर्मधारारूप कहिये। तैसैं ही जीवकै दर्शन-शक्ति अदर्शनरूप होयगी। तैसैं ही जीवकै चारित्रकी केतेक चारित्ररूप केतेक अवर विकाररूप हैं। ऐसैं भोगगुणकी सब गुण जेतेक निरावरण सो शुद्ध। अवर विकार सो सर्व मिश्रभाव भया। प्रतीतिरूप ज्ञानमैं सर्वशुद्ध श्रद्धाभाव भया। परि आवरण ज्ञानका तथा और गुणका लग्या है। तातैं मिश्रभाव है, स्वसंवेदन है, परि सर्व प्रत्यक्ष नाहीं। सर्वकर्म अंश गये शुद्ध है। अघाति रहै परि शुद्ध है। घातिया नाशतैं परि सकल परमातमा* है। प्रत्यक्षज्ञान तो भया है।

अर सिद्ध निकल (शरीर रहित) सकल कर्म रहित परमात्मा÷ है। अन्तरात्माके ज्ञानधारा और कर्मधारा है। कोई प्रश्न करै जो बारहवें गुणस्थानमें दोय धारा हैं कि एक ज्ञानधारा ही है? जो ज्ञानधारा ही है, तौ अन्तरात्मा मति कही। जो दोय

---

* ....तिन में घाति निवारी।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥
÷ज्ञान शरीरी त्रिविधि कर्ममल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता॥
—छहढाला, पं० दौलतराम

धारा हैं तो बारहमें (गुणस्थानमें) मोहक्षय भये राग-द्वेष-मोह सब गये, दूसरी कर्मधारा कहां रही? ताका समाधान-ज्ञान परोक्ष है (कारण), केवलज्ञानावरण है, तातैं अज्ञानभाव बारहवें गुणस्थान तक है। तातैं अन्तरात्मा है। प्रत्यक्ष ज्ञान बिना वह परमातमा नाहीं। कषाय गये, परि (परन्तु) अज्ञान भाव है। तातैं परमात्मा नाहीं, अन्तरात्मा है, प्रश्न—१२ वें गुणस्थानमें अज्ञान कहा? ताका समाधान—केवलज्ञान बिना सकल पर्याय न भासै सो ही अज्ञान निज प्रत्यक्ष विना हू अज्ञान है। तातैं अज्ञान संज्ञा भई। यह मिश्र अधिकार (कहा)।

निश्चय-वस्तुस्वरूप

आगैं, निश्चयकरि वस्तुका स्वरूप जैसा है, ताका कछु वर्णन कीजिये है—वस्तु निज अपना स्वरूप अनन्त गुणमय तिनमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रधान हैं। काहेतैं? देखने-जानने परिणमनकरि, वेदनतैं रसास्वाद अनुभव होय, तहां सुख समकित प्रगटै, तिनकरि चेतना जानी गई, तब चेतन सत्ता, चेतन वस्तुत्व, चेतन द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व ये गाये (कहे)। तातैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जीव वस्तुका सर्वस्व है। द्रव्य-गुण-पर्याय ये वस्तुकी अवस्था हैं। अनादिनिधन वस्तु अखण्ड चेतनारूप वर्तै है। परि अनादि कर्म जोगतैं अशुद्ध होय रही है। सुख निधानकौं न जानैं है, तौऊ शक्ति शुद्ध स्वरूप है।

जैसैं काहूनैं कोई एक ज्ञानवान पुरुषकौं पूछा—हमकौं

शुद्ध चेतनकी प्राप्ति बताओ? तब ता पुरुष नैं कह्या-एक अमुका ज्ञानवान है ता पासि जाओ, तुमकौं वह बतावेगा, प्राप्ति करावेगा। तब वह गयौ। जाय, प्रश्न कियो—हमकूं चेतनकी प्राप्ति कराओ। तब तासौं (उससे) कह्या, कि तुम, दरियावमें एक मच्छ रहै है, ता समीप जावो। तुमकौं वो मच्छ चैतन्य प्राप्ति करावेगा। तब वाके उपदेशसौं वह नर ता (उस) मच्छ समीप गयो, जाय प्रश्न कियो, हमकौं शुद्ध चैतन्यकी प्राप्ति कराओ। तब मच्छने ऐसा वचन कह्यौ, हमारौ एक काम है, सो पहलैं करो, तौ पीछैं तुमकौं चिदानंदमैं लीन करैं। तुम बड़े संत हौं, हमारो कार्य काहू नैं अब तक न कियो, तुम पराक्रमी दीसौ हौ। तातैं यह नियम है, हमारो काज किया, अवश्य तुमारौ काज करैंगे, ठीक जानौं। तब वो पुरुष बोल्यौ, तुमारो कारिज करूंगा, सन्देह नाहीं करौ। तब मच्छनैं वासौं कह्यौ, हम बहुत दिनके तिसाये या दरियावमैं रहैं हैं। हमारी तृपा न गई, पाणीकौ जोग न जुरयौ, कहूंसैं जतन करि जल ल्याओ, तुम बड़ौ उपकार करौ, हमारी तृषा मेटौ, महाजनकी चाल (स्वभाव) है पर दुःख मेटैं। तातैं यह उपकार करौ हम तुमकौं चिदानन्द प्रत्यक्ष दिखाय प्राप्ति करायेंगे॥

तब वो पुरुष बोल्यौ तुम ऐसैं काहे कहौ? जल समूह मांहि तुम सदा ही रहौ हौ, ऐसैं मति कहौ, जो जल लावो! दरियाव ओर देखौ, यह जल सौं प्रत्यक्ष भरयौ है! तब मच्छ

बोल्यौ, ऐसैं तुम कहत हौ, यह बात तुम मानत हौ? तौ तुम चिदानंद प्रत्यक्ष हौ, चेतना है, तो ऐसो विचार तुमनें कियो है? अब तुम हमकौं पूछण आये हो, तातैं चिदानन्द हंस परमेश्वर तुमही हौ। थिर होइ संदेह त्यागौ। आपणौ चैतन्य-स्वरूप अनुभवौ, परके अनादि जोगमैं हू आतमा जैसाका तैसा है, परमैं अत्यन्त गुप्त भया है। तौऊ देखनेंका स्वभाव न गया। ज्ञानभाव न गया। परिणाम (परिणमन पर जैसा) न भया। परके आवरणतैं आवर्‍या मलिन भया। परि निश्चय करि अखण्ड स्वरूप चिदानन्द अनादिका है, सौ ज्यौंका त्यौं वण्या है। कछु घट्या वढ़्या नाहीं, (मात्र) भरम कल्पनातैं स्वरूप भूल्या है। परहीकौं आपा मान्या तौ कहा *भया?

जसैं कोई चिन्तामणि करविषैं (हाथमें) भूलि, काच-खण्डकौं रतन मानि चलावै तौ वह रतन न होय (और) चिन्तामणिकौं कांच जानैं, तौ कांच न होय, चिन्तामणि पणा न जाय। तैसैं आत्माकौं पर जानैं तौ पर न होय (और) परकौं

* निहचै निहारत ही आतमा अनादि सिद्ध आप निज भूल ही तैं भयो विवहारी है। ज्ञायक सकति यथा विधि सो तो गोप्य दई प्रगट अज्ञान भाव दशा विसतारी है॥ अपनो न रूप जानै और ही स्यौं और मानै ठानै बहु खेद निज रीति न संभारी है। ऐसे तो अनादि कहो कहा सिद्धि साधि अब नैंकहू निहारो निधि चेतना तुम्हारी है॥

—ज्ञानदर्पण ४७

आपा जानैं तौ आपा न *होय वस्तु अपने स्वभावका त्यजनं काहू काल न करै। वस्तु वस्तुत्वकौं न तजै। अपने द्रव्यकौं न तजै। अपने प्रमाणकौं न तजै (तथा) अपने प्रदेशकौं न तजै। इत्यादि भावकौं न तजै। तातैं अनादि प्रदेश प्रमाणकौं न तजै। शुद्ध-अशुद्ध दोऊ अवस्थामें अपनी द्रव्य क्षेत्र काल भावकी दशा न तजै। (तेरी) महिमा अनन्त अमिट है (अर्थात्) काहू पे न मेटी जाय, निश्चयकरि जो है सो है। तातैं निज वस्तुका श्रद्धान ज्ञानादि अनंत गुणमात्र जानि अनंत सुख करै, तौ सुखी होय। उपायतैं उपेय पाइये है। सो उपेय आनन्दघन परमात्मा परमेश्वर है। ताकौ उपाय यातैं करणौ, जु, संसार अवस्थामें ही शरीरमें कर्मबन्धतैं गुप्त भयौ-पर-भावनातैं दुःखी भयौ, अपनौं परमेश्वरपद न पायौ। ताकौ उपाय होय तौ उपेय पाइये, सो उपाय कहिये हैं–

उपाय अपने स्वरूप पावनेका अपना उपयोग है। और उपाय तप-जप-संयमादि शुभकर्म हैं। जिनमें परमात्माकी भक्ति शुभ परि प्रतीतितैं, कारण भी है। कारणं, ध्यानतैं कार्य

---

* ज्ञान उपयोग योग जाकौ न वियोग होय निहचैं निहारै एई तिहूं लोक भूप है। चेतना अनन्त चिद्रूप सासतौं विराजमान गति गति भ्रम्यौं तोऊ अमल अनूप है॥ जैसैं मणि मांहि कोऊ कांच खंड मानैं तोऊ महिमा न जाय वामैं वाहीको सरूप है। ऐसैं ही संसारिकैं सरूपको विचारयौ मैं अनादिको अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है।

—ज्ञानदर्पण ३०

की सिद्धि हो है। ग्रंथ उपदेश भी कारण है। परि (परन्तु) उपयोग आये शुद्ध हूवै। तातैं उपयोगकी एकदेश शुद्धताकी चढ़नि ज्यौं ज्यौं होय त्यौं त्यौं मोक्षमार्गकौं चढ़ै॥ यह श्री जिनेन्द्र भगवानका निराबाध उपदेश है। सकल उपाधि अनादि तैं लगी आई (किन्तु) जब उपयोग करि समाधि लागै, (तब) साक्षात् शिवपन्थ सुगम होय। अनेक संत स्वरूप समाधि धरि धरि पार भये॥ अब कछुक समाधि वर्णन कीजिये है—

समाधिवर्णन।

समाधि तौ प्रथम ध्यान भये होय है, सो ध्यान एकाग्र-चिन्तानिरोध भये होय है। सो चिन्तानिरोध राग-द्वेषके मिटे होय है। सो राग—द्वेष इष्ट—अनिष्ट समागम मिटे, मिटै है। तातैं जीव जो समाधिवांछक हैं, ते इष्ट—अनिष्टका समागम मेटि, राग—द्वेष त्यागि, (अन्य) चिंता मेटि, ध्यानमैं मन धरि, चिद्-स्वरूपमैं समाधि लगाय, निजानन्द भेंटौ। स्वरूपमैं वीतराग-तातैं ज्ञानभाव होय तब समाधि उपजै (और) वह अपने स्वरूपमैं मन लीन करै। द्रव्य—गुण—पर्यायमैं परिणाम लीन (होय), स्वसमय—समाधि ऐसी होय है॥

तब इन्द्रादि सम्पदाके भोग रोगवत् भासैं। *द्रव्य, द्रवणतैं नाम पाईये है। गुणकौं द्रवैं (प्राप्त होवे) सो द्रव्यत्व-लक्षण परिणाममैं, तातैं गुण (समुदायरूप) द्रव्यमैं परिणाम

* गुणान्द्रवंति गुणैर्वा द्रूयन्त इति द्रव्य "सर्वार्थसिद्धिः"।

लीन होय। गुण द्रव्यमैं द्रव्यत्व लक्षण है। तौ परिणामसौं द्रव्य गुण मिलि गये तातैं द्रव्यत्वकी एकदेशता साधककै ऐसी भई जो परीषह अनेककी वेदना न वेदै है। रसास्वादमैं लीन आनन्दरस तृप्त भया। जब मन परमेश्वरमैं मिलै लीन होय, न निकसै, परमानन्द वेदै तब स्वरूपकी धारणा होय।

निरन्तर जहां अचलज्योतिका विलास अनुभवप्रकाशमैं भया, उपयोगमैं परिणाम लगे। ज्यौं ज्यौं दर्शनचेतना स्वरूप अनूप अखण्डित अनन्तगुण मण्डितकौं जानि रसास्वाद ले, त्यौं त्यौं पर विस्मरण होय, पर उपाधिकी लीनता मिटै। समाधि प्रगटै। तब उत्कृष्ट सम्यक्प्रकार स्वरूप वेत्ता होय। सम्यग्ज्ञान भये वस्तुकी महिमा जानै, जानतां–आनंद होय। ज्ञान ज्ञानकौं जानै। ज्ञान दर्शनकौं जानै, ज्ञान सब गुणकौं जानै। द्रव्यकौं जानै, पर्यायकौं जानै, एकदेश भेद साधक ज्ञान जानै। ज्ञान करि वस्तुको जानतैं परमपद पावै। ताका-सा (उस जैसा) सुख परोक्ष ज्ञान ही मैं है। प्रत्यक्ष प्रतीतिमैं वेदै है। तहां आनन्द ऐसा होय है।

संप्रज्ञातसमाधिमैं दुःखादि वेदना प्रत्यक्ष भये हू न वेदै। विधान स्वरूप वेदनेका है। मन–विकार जेते अंशकरि विलय गया तेती समाधिभई (और) सम्यग्ज्ञान करि जेता भेद वस्तुका गुणनकरि जान्या तेता सुख–आनन्द बढ्या। विश्राम भये, स्वरूपथिरता पाय, समाधि लागी, ज्ञानधारा निरावरण होय, ज्यौं ज्यौं निजतत्त्व जानै, त्यौं त्यौं विशुद्धता केवलकरि ज्ञान-

परिणति परम पुरुषसौं मिली, निज महिमा प्रगट करै। तहां अपूर्व आनंदभावका लखाव होय तव समाधि स्वरूपकी कहिये॥

तहां अनादि अज्ञानका भ्रम भाव (जो) आकुलता मूल था सो मिट्या, अनात्म अभ्यासके अभावतैं सहजपदका भाव भावत, भव घासना विलावत, दरसावत परमपदका स्थान, गुणका निधान, अमलान भगवान सकल पदार्थका जाननरूप ज्ञानकी प्रतीति प्रमाण भावकरि, नवनिधान आदि जगतका विधान झूंठा भास्या। तव प्रकाश्या आत्मभाव, लखाव आपकेतैं कीना; तव चेतनभाव लीना, शुद्ध धारणा धरी, निज भावना करी, शिवपदकौं अनुसरी, आनन्द रससौं भरी, *हरी भववाधा-अवाधा, जहां सदा मुदा (हर्ष) सेती एती शक्ति बढ़ाई, शिवसुखदाई, चिदानन्द अधिकाई (वह) ग्रंथ ग्रन्थनमैं गाई, सो समाधितैं पाईये है।

+यह स्वरूपानन्द पद, भेदी समाधितैं होय है। वस्तुका स्वरूप गुणके जानैंतैं जानै। गुणका पुंज वस्तुमय है। वस्तु अभेद है। भेद गुण-गुणीका, गुणकरि भया। तातैं गुणका भेद, वस्तु अभेद जनावनैंकौं कारण है॥

+ वितर्क कहिये—द्रव्यका शब्द ताका अर्थ भावना-भाव-श्रुत श्रुतमें स्वरूप अनुभवकरण कह्या। परमातम उपादेय कह्या। ताहीरूपभाव सो भावश्रुतरस पीव। अमरपद समाधितैं है।

* + मु० प्रति में यह शब्द नहीं है।

विचार, अनादि भव भावनका नाश, चिदानन्द द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार न्यारा जानि, दर्शन-ज्ञान वानगीकौं पिछानि, चेतनमैं मग्न होता, ज्यौं ज्यौं उपयोगस्वरूप लक्षणकौं लक्ष्य रसस्वाद पीवै, सो स्वपर भेद विचारनें (से) सारपद पाय समाधि लागी। अपार महिमा जाकी परमपद सो पाया। अनादि पर इन्द्रिय-जनित आनन्द मानै था, सो मिट्या। ज्ञानानंदमें समाधि भई, वस्तु वेदी, आनन्द भया, गुण वेदि आनन्द भया। परिणति विश्राम स्वरूपमें लिया, तव आनन्द भया। एकोदेश-स्वरूपानन्द ऐसा है।

जहां इन्द्रियविकार वल विलय भया है, मन विकार न होय, सुख अनाकुल रसरूप समाधि जागी है, "अहं ब्रह्म", "अहं अस्मि" ब्रह्म प्रतीति भावनमें थिरतामें समाधि भई; तहां आनन्द भया। सो केतेक काल लगु 'अहं' ऐसा भाव रहे, फिर समाधिमें 'अहंपणा' तौं छूटे, 'अस्मि' कहिये है, हूं ऐसा भाव रहै तहां दर्शन-ज्ञानमय हौं, मैं समाधि लागौं, हौं ऐसा हू रहणा (भी) विचार है॥

इसके मिटें विशेष ऐसा होय जो द्रव्यश्रुत वितर्कपणा मिटी। एकत्व, स्वरूपमें भया, एकताका रसरूप मन लीन भया, समाधि लागी, तहां विचार भेद मिट्या, अनुभव वीतराग रूप स्वसंवेदनभाव भया। एकत्व चेतनामें मन लागा, लीन भया, तहां इन्द्रियजनित आनन्दके अभावतैं स्वभाव लखावका

रसास्वाद करि आनन्द बढ़्या, तहां फिरि "अस्मि भाव" ज्ञानज्योतिमैं था सो भी थक्या॥

आगैं विवेकका स्वरूप, स्वरूप परिणति शुद्धीका ऐसा- जहां परमात्माका विलास नजीक भया, तहां अनंत गुणका रस (भया) फिरि परिणाम वेदि समाधि लागी। निर्विकार धर्मका विलास प्रकाश भया। प्रतीति रागादि रहित भावनमैं, मनोविकार बहोत गया। तब आगैं अंश प्रज्ञात भया। तब परके जाननेंमें विस्मरणभाव आया। तब केवलज्ञान अति शीघ्र कालमैं पावै। परमात्मा होय लोकालोक लखावै। ऐसी अनुभवकी महिमा मनके विकार मिटैं होय है। सो मन विकार मोहके अभाव भयें मिटै है। सकल जीवकौं मोह महारिपु है। अनादि संसारी जीवकौं नचावै है। अरु चउरासीमैं संसारी जीव हर्ष मानि-मानि भवसमुद्रमें गिरैं है-परैं हैं (तो भी) आपाकौं धन्य मानै है। देखो धिठौंही भूलितैं कैसी पकरी है। नैक निज- निधि अनन्त सुखदायककौं न संभारै है। यातैं इन ही जीवनकौं श्री गुरूपदेशामृत पान करने जोग्य है। इसतैं मोह मिटै (तथा) अनुभव प्रगटै सो कहिये—

प्रथम श्री जिनेन्द्रदेव आज्ञा प्रतीति करै, तहां पीछे भगवत् प्रणीत तत्त्व उपादेय विचरै (तब) चेतनप्रकाश अनन्त सुखधाम, अमल अभिराम, आत्माराम, पर रहित उपादेय है—पर हेय है। स्व-पर भेदज्ञानका निरतंर अभ्यासतैं शुद्धचैतन्य-

तत्त्वकी लब्धि होय, तिहितैं राग–द्वेष–मोह मिटै। कर्मसंवर होय तब कर्म मिटवेतैं निजज्ञानतैं निर्जरा होय। तब सकल कर्मक्षय निज परिणाम हुवा भाव-मोक्ष होय। तब द्रव्य मोक्ष होय ही होय। तातैं भेदज्ञान अभ्यासतैं परमपद सिद्ध (होय) सो भेदज्ञान उपजानेका विचार कहिये हैं॥

ज्ञान भाव-जाननरूप-उपयोग विभावभाव अपनैं जानैं है। सो विभावके जाननेकी शक्ति आतमा आपणी जानै। जानि रूप परिणमन करै। ज्ञानरस पीवै विभावनकौं न्यारे न्यारे जानैं। विभावरूप कर्मधारा, ज्ञानरूप परिणाम सुधाधारा न्यारी [न्यारी] धारा दोन्यौं जानै। पुद्गल-अंश आठकर्म-शरीर भिन्न है जड़ है। चेतन उपयोगमय है। इनमैं विवेचन करै। जुदा प्रतीति भाव करै, प्रत्यक्ष (शरीर) जड़ रहै। सदा जामैं चेतना प्रवेश न होय। चेतना जड़ न होय, यह प्रत्यक्ष सब ग्रन्थ कहैं सब जन कहैं। जिनवाणी विशेष करि कहै। अपने जाननेमैं हू आवै। शरीर जड़ अनंते त्यागै। दर्शन-ज्ञान सदा साथ रह्यो करे, सो अब भी देखनें–जाननें वाला यह मेरा उपयोग सो ही मेरा स्वरूप है। तब उपयोगी अनुपयोगी विचारत, प्रतीति जड़ चेतनकी आवै। विभाव कर्म-चेतना है। कर्मराग द्वेष मोह-भाव कर्म तिसमैं चेतना परिणमै है। तब चिद्विकार होय। इस चिद्विकारकौं आप करि आपा मलिन किया है। केवल-ज्ञानप्रकाश आत्माका विलास है। तिसकौं न संभारै है। मोह-

वशतैं ग्रंथकौं सुणै है अरु जानै है। शरीर विनसैगा, परिवार, धन, तिया, पुत्र ये भी न रहैंगे, परि इनसौं हित करै। नरकबंध परै। अनंत दुःख कारणकौं सुख समझै॥

ऐसी अज्ञानता मोह वश करि है। तातैं ज्ञानप्रकाश मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है। सो सदा स्वभाव मेरा मैं हौं। कबहूं जिसका वियोग न होय, अनंत महिमा भंडार, अविकार, सारसरूप दुर्निवार मोहसौं रहित होय। अनुपम आनंदघनकी भावना करणी। अंश-अंश परका, जड़ वा पर जीव, सब स्वरूपसौं भिन्न जानि, दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनंतगुणमय हमारा स्वरूप है। प्रतीतिमैं ऐसैं भाव करत पर न्यारा भासै, विभावरूप उफद-मल-औपाधिकभाव आपके भरमतैं भया, तिसतैं भरम मेटि, विभाव न होय, स्वभाव प्रगटै, अनादि अज्ञानतैं गुप्त ज्ञान भया।

शुद्ध—अशुद्ध दोऊ दशामैं ज्ञान शासती शक्तिकौं लिये चिद्विकार भाव-क्रोधादिरूप भये-होय सो ही भाव मेटि, निर्विकार सहजभाव आप आपमैं आचरण विश्राम थिरता परिणाम करि करै। जो बाह्य परिणाम उठै है सो अशुद्ध है, सो परिणाम का करणहार अशुद्ध होय है। बाह्य विकारमैं न आवै। चेतना नांव उपयोगरूप अपनी इस ज्ञायकशक्तिकौं नीकै जानै तौं निज-रूप ठावा होय। प्रतीति चेतन उपयोगकी करत-करत परसौं स्वामित्व मेटि मेटि, स्वरूप रसास्वाद चढ़ता-चढ़ता जाय। तब शुद्ध उपयोग स्वरस-पूर्ण विस्तार पावै। तब कृतकृत्य निवसै।

यह श्रीजिनेंद्रशासनमैं स्याद्वाद विद्याके बलतैं निज ज्ञान-कलाकौं पाय अनाकुलपद अपना करै। इहां सब कहनेंका तात्पर्य यह है। जो परकी अपनायति (अपनापन) सर्वथा मेटि स्वरस-रसास्वादरूप शुद्ध उपयोग करिये। राग-द्वेष विषय-व्याधि है सो मेटि-मेटि परमपद अमर होय, अतीन्द्रिय अखण्ड अतुल अनाकुल सुख आपपदमैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि वेदिये। सकल संत-मुनिजन-पंचपरमगुरु स्वरूप-अनुभवकौं करै हैं। तातैं महान् जन जा पंथकौं पकरि पार भये सो ही अविनाशीपुरका पंथ ज्ञानी जननकौं पकरणा अनन्त कल्याणका मूल है।

परिणाम चेतना-द्रव्य चेतनामैं लीन भये अचलपद ज्ञानज्योतिका उद्योत होय है। एकोदेश उपयोग शुद्ध करि स्वरूपशक्तिकौं ज्ञान द्वारामैं जानन लक्षण करि जानै। लक्ष्य-लक्षणप्रकाश आपका आपमैं भासै। तब सहज धारावाही निजशक्ति व्यक्त करता-करता संपूर्ण व्यक्तता करै। तब यथावत् जैसा तत्त्व है तैसा प्रत्यक्ष लखावै। देखो कोई भगल विद्या करि कांकरेनकौं *हरि हीरा मोती दिखावै है। बुहारीके तृणकौं सर्प करि दिखावै है। तहां वस्तु लोकनकौं सांची दरसै। परि सांची नाहीं। तैसैं परमैं निज मांनि आपकौं सुख कल्पै सो सर्वथा झूंठ है। सुखका प्रकाश परम-अखण्ड-चेतनाके विलासमैं है। शुद्ध स्वरूप आप परमैं खोजना करै तब न पावै। (स्व-परको यथावत्

---

* गुजराती प्रतिमें इसकी जगह 'नील' शब्द है।

जाने तब पावै) बारवार विस्तार कहिणां इस वास्ते आवै हैः- अनादिका अविद्यामें पगि रह्या है, मोहकी अत्यन्त निविड़ गांठि परी है, तातैं स्वपदकी भूलि भई है। भेदज्ञान अमृतरस पीवै, तब अनंतगुणधाम अभिराम आत्मारामकी अनंत शक्तिकी अनन्त महिमा प्रगट करैं। यह सब कथनका मूल है। पर-परिणाम दुःखधाम जानि, मानि परकी मेटि, स्वरस सेवन करणां अरु निदान पर (लक्ष्य पर) दिष्टि कीजै।

विनश्वर पर-दुःख मूलका अनादि सेवन किया। तातैं जन्मादि दुःख भये। अब नरभवमें संतसंगतैं तत्त्वविचारका कारण मिल्या, तौ फेरि कहा अनादि भव-संतानकी बाधाके करणहार परभाव सेइये ? यह जिसतैं अखंडित अनाकुल अविनाशी अनुपम अतुल आनन्द होय, सो भाव करिये। जो भाव मनोहर जानि मोह करैं हैं। अपने आत्माकौं झूंठी अविद्याके विनोद करि ठगै है। सकल जगत चारित्र झूंठ वन्या ही है, सो मोहतैं न जानै है। जो स्वरस सेवन (करे) तौ परप्रीति-रीति रंज हू न धारै (और) अनन्त महिमा भाण्डारकौं ज्ञान चेतनामें आपा अनुभवै। जो-जो उपयोग उठै सो मैं हौं (हूं) एसा निश्चय भावनमें करै, वो तिरै ही तिरै। अनादिका विचार करै। अनादिका परमैं आपा जानि दुःख सह्या। अब श्रीगुरुनैं ऐसा उपदेश कह्या *है। तिसकौं सत्य करि मानते ही श्रद्धातैं

* भैया जगवासी तू उदासी ह्वै कैं जगतसौं, एक छ महीना उपदेश

मुक्तिका नाथ होय है। तातैं धन्य सद्गुरु! जिनौंने भव-गर्भमें-सों काढनेका उपाय दिखाया। तातैं श्रीगुरुका-सा उपकारी कोई नाहीं, ऐसैं जानि श्रीगुरुके वचन प्रतीतितैं पार होना।

जेता अनुराग विषयनमैं करै है, मित्र पुत्र भार्या धन शरीरमैं करै है, तेता रुचि श्रद्धा प्रतीतिभाव स्वरूपमैं, तथा पंचपरमगुरुमैं करै, तौ मुक्ति अति सुगम *होय। पंचपरम गुरुका राग भी ऐसा है, जैसा संध्याका राग सूर्य अस्तताका कारण है, प्रभातकी संध्याकी ललाई सूर्य उदयकौं करै है। तातैं ÷विविध परमगुरु विना, शरीरादि राग केवलज्ञानकी अस्तता कौं कारण है (और) पंच परमगुरुका राग, केवलज्ञान उदयकौं कारण है। तातैं विशेष करि परम धर्मका दाता परमधर्मकौ अनुभव राग सुखदायक है। अर्थ (लक्ष्मी) अनन्त अनर्थकौं करै; सो किसही अर्थि नहीं; अर्थ सो ही, जो परमार्थ साध। तिस करि कामसौं किस काम? निज कामना सैं काम सो ही सुकाम सुधारै। मिथ्यारूपधर्म अनन्त संसार करै, सो धर्म कहा?

मेरो मानुरे। और संकलप विकलपके विकार तजि, वैठिकैं एकन्त मन एक ठौर आनुरे॥ तेरो घट सर तामैं तू ही है कमल ताकौं, तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे। प्रापति न है है कछु ऐसो तू विचारतु है, सही ह्वै है प्रापति सरूप यों ही जानुरे॥ ३॥

समयसार नाटक, अजीव द्वार

* जैसी भक्ति हरामनें तैसी जिनमें होय। भेदज्ञानतैं सहज लहि परमातम पद सोय॥

÷पंच प्रकारके

सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय निजधर्म, *व्यवहार रत्नत्रयरूप कारण। मोक्ष सो ही फेरि कर्म न बन्धै, (इसलिये) ऐसा विचारणा-जैसैं दीपक मन्दिरमैं धरै तैं प्रकाश होय तौ सब सूझै, तैसैं ज्ञानीकौं ज्ञान प्रकाशसौं सब सूझै ॥

कैसैं? ज्ञान करि विचारै, शरीरमैं चेतन है दिष्टि (दृष्टि) द्वार करि देखै है। ज्ञान द्वार करि जानै है। अपने उपयोग करि आप चेतन हौं। आप ऐसैं जाने, देहमैं देहकौं देखनेहारा मेरा स्वरूप चेतनरूप है। तौ जड़—जड़कौं चलावै चेतन प्रेरक है। अचेतन अनुपयोगी जड़ न देखै न जानै, यह तौ प्रसिद्ध है। जो शरीर देखै-जानै तौं, (जब) गत्यन्तर जीव होय, तब शरीर क्यों न देखै? तातैं यह देखनें जाननें करि आपा चेतनरूप, प्रत्यक्ष ठावा (निश्चय) करि स्वरूपकौं चेतन मांनि, अचेतनका अभिमान तजना मोक्षका मूल है।

शरीर वासनाका त्यागी आपा स्वरूप अवगाढ़ चेतनस्वरूप करि भावना। ऊजड़कौं वस्ती मानै है, चेतनवस्तीकौं ऊजड़ मानै है। ऐसी भूलि मेटि, तेरी चेतना वस्ती शाश्वत है। जहां बसै तौ अपना अनन्तगुणनिधान न मुसावै (लुटावे) निज धनका धणी परमसाह होय। तब अनन्त सुख-व्यापारमैं अविनाशी नफा होय। अनादि परमैं आपा मान्या, परकौं ग्रहण

---

* यह कथन निमित्तका है।

करते-करते पर वस्तुका चोर भया, जगमांहि दुःख दण्ड भोगवै है। विवेक राजाका अमल (शासन) होय (और) परग्रहण-रूप चोरी मिटै, तब आप साहपद धरि सुखी होय। तब निज-परिणति रमणीकरि अपना निज घर थिर करै।

अनादि अथिरपदका प्रवेश था, ताकौं त्यागि अखण्ड अविनाशी पदकौं पहुँचै। यह साक्षात् शिवमार्ग स्वरूपकौं अनुभव यह शिवपद स्वरूपकौं अनुभव, त्रिभुवनसार अनुभव, अनुभव अनन्त कल्याण, अनुभव महिमा भण्डार, अनुभव अतुल बोध फल, अनुभव स्वरस रस, अनुभव स्वसंवेदन, अनुभव तृप्ति भाव, अनुभव अखण्डपद सर्वस्व, अनुभव रसास्वाद, अनुभव विमल रूप, अनुभव अचल ज्योतिरूप प्रगट करण, अनुभव-अनुभवके रसमैं अनन्त गुणकाररस है, पंचपरमगुरु अनुभवतैं भये, *होहिंगे! अनुभवसौं लगेंगे सकल संत महंत भगवंत। तातैं जे गुणवन्त हैं, ते अनुभवकौं करौ। सकल जीव राशि, स्वरूपकौं अनुभवौ। यह अनुभव-पंथ निरग्रन्थ साधि साधि भगवंत भये।

परिग्रहवंत सम्यग्दृष्टि हू अनुभवकौं कबहूं-कबहूं करैं हैं, तेहू धन्य हैं। मुक्तिके साधक हैं। जा समय स्वरूप-अनुभव

---

* गुण अनन्त के रस सबै अनुभव-रसके माहिं।
यातैं अनुभौ सारिखौ और दूसरौ नाहिं ॥ १५३ ॥
पंच परम गुरु जे भये जे होंगे जग माहिं।
ते अनुभौ परसादतैं यामैं धोखौ नाहिं ॥ १५४ ॥
(ज्ञान-दर्पण)

करै है, ता समय सिद्ध समान अमलान आत्मतत्त्वकौं अनुभवै है। एकोदेश स्वरूप अनुभवमैं स्वरूप अनुभवकी सर्वस्व जाति पहिचानी है। अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, करत उद्धार है, अविकार है, करै भवपार है, महिमाको धारै है। दोपकौ हरणहार है। यातैं चिदानन्दको सुधार है॥

(सवैया)

देव जिनेन्द्र मुनीन्द्र सबै अनुभौ रस पीयकैं आनन्द पायौ।
केवलज्ञान विराजत है नित सो अनुभौ रस सिद्ध लखायौ॥
एक निरंजन ज्ञायक रूप अनूप अखण्ड स्व-स्वाद सुहायौ।
ते धनि हैं जग मांहि सदैव सदा अनुभौ निज आपको भायौ॥१॥

(अडिल्ल)

यह 'अनुभव-प्रकाश' ज्ञान निज दाय है।
करि याकौ अभ्यास संत सुख पाय है॥
यामैं अर्थ अनूप सदा भवि सरदहै।
कहै "दीप" अविकार आप पदकौं लहैं॥ १॥

इति श्री दीपचन्द साधर्मी कृत अनुभव प्रकाश नाम ग्रन्थ सम्पूर्णम्।